॥ श्रीदामोदरमदनमोहनौ प्रभू विजयेते ॥

॥ श्रीवल्लभाधीशो जयति ॥

॥ जयति श्रीविट्ठलेश्वरः ॥

अपने मार्गके सिद्धांतोंको सरल भाषामें, सच्चे ढंगसे; और मूलवचनोंके प्रामाण्यसहित प्रस्तुत करनेवाले ग्रन्थकी कमी अनुभूत हो रही थी. चि.शरदबावाने इस पुस्तिकाके द्वारा इस न्यूनताको दूर किया है.

यहाँकी श्रीपुरुषोत्तम-पाठशालाकी प्रारंभिक परीक्षाओंका तो यह पाठ्य ग्रन्थ है ही — पुष्टिमार्गकी अन्य परीक्षाओंकेलिये भी यह ग्रन्थ उपयोगी होगा.

गोस्वामी श्रीश्याममनोहरजी (किशनगढ़-पार्ला) का इस पुस्तिकाको आशीर्वाद देना इस पुस्तिकाका स्वतःप्रामाण्य सिद्ध करता है.

इस पुस्तिकाकी रचना और प्रकाशन से आनंद तथा सन्तोष का अनुभव करता हूँ.

श्रीप्रभुचरणप्राकट्योत्सव — *गो. किशोरचन्द्र पुरुषोत्तमलालजी*
(जुनागढ़)

प्र वे शि का

संयुक्त प्रकाशन :
(१) श्रीपुरुषोत्तमलालजी पुष्टिमार्गीय चॅरीटेबल ट्रस्ट,
मोटी हवेली, पाँच हाटडी, जुनागढ़, गुजरात.
(२) श्रीवल्लभविद्यापीठ-श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरणाश्रम ट्रस्ट
वैभव कॉओपरेटीव सोसायटी, पूना-बॅंगलोर रोड,
कोल्हापुर, महाराष्ट्र.
(३) गोस्वामी श्रीशरद अनिरुद्धलालजी (मांडवी-हालोल).

प्रति : १००००.

प्रकाशनवर्ष : वि.सं.२०४९.

सर्वाधिकार : लेखकके आधीन

मुद्रक :
तुषार एन्टरप्राईझीस
११०बी, अंधेरी इन्ड. एस्टेट,
ऑफ वीरा देसाई रोड, अंधेरी (प.)
मुम्बई — ४०००५८.

निःशुल्क

प्रवेशिका

लेखक :

गोस्वामी शरद अनिरुद्धलालजी

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१. मंगलाचरण	१	१६. वैष्णवचिह्न	२०
२. धर्म	२	१७. पुष्टिभक्ति	२१
३. सम्प्रदाय	३	१८. ब्रह्मसंबंध	२३
४. गुरु	४	१९. गुरुके लक्षण	२४
५. श्रीमहाप्रभुजी	४	२०. सर्वसमर्पण	२६
६. श्रीगोपीनाथजी	५	२१. असमर्पितत्याग	२८
७. श्रीगुसांईजी	६	२२. कृष्णसेवा	२९
८. श्रीयमुनाजी	७	२३. सिद्धान्तसमझ	३३
९. श्रीकृष्ण	८	२४. दान-देवद्रव्य	३४
१०. जीव-जगत्	१०	२५. देवलक	३६
११. पुष्टिभक्तिमार्ग	१२	२६. श्रवण-कीर्तन-सत्संग	३८
१२. भगवदाश्रय	१४	२७. ब्रह्मवाद	३९
१३. अन्याश्रयत्याग	१६	२८. प्रमाण	३९
१४. शरणदीक्षा	१७	२९. सामान्यधर्म	४१
१५. शरणमार्ग	१९	३०. दिनचर्या	४४

मंगलाचरण

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे।
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः॥

अर्थ : अनेक नाम और रूप को धारण कर जो क्रीड़ा करते हैं, इसी तरह यह जगत्की क्रीड़ा भी जिनके द्वारा उन-उन नाम-रूपोंको धारण करनेके कारण ही चल रही है; और जिनके कारण मिथ्या सांसारिक नाम-रूपोंवाली क्रीड़ा भी चल रही है— ऐसे अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार.

जयति श्रीवल्लभार्यो जयति च विट्ठलेश्वरः प्रभुः श्रीमान्।
पुरुषोत्तमश्च तैश्च निर्दिष्टा पुष्टिपद्धतिर्जयति॥

अर्थ : महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यकी जय हो! श्रीमान् विट्ठलेश्वर प्रभुचरणकी जय हो! श्रीपुरुषोत्तमजीकी जय हो! इन सभी आचार्योंके द्वारा उपदिष्ट पुष्टिमार्गकी जय हो!

धर्म

अन्न और विद्याभ्यास से हमारे शरीरका और बुद्धिका विकास होता है. मजबूत शरीरवाले बुद्धिमान् लोग ही जीवनमें प्रगति कर सकते हैं. पर क्या आप यह जानते हैं कि जिस जीवात्माके कारण हम बोल चल और सोच पाते हैं, उसका विकास कैसे होता है ?

धर्मके आचरणसे जीवात्माका विकास होता है. इसीलिये आत्माकी उन्नतिके साधनको 'धर्म' कहा जाता है. यहां प्रश्न उठ सकता है कि धर्मनियम किसने बनाये होंगे? श्रीभागवतमें कहा गया है :

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतम्

अर्थ : खुद भगवान्ने ही धर्मनियम बनाये हैं.

यदि हम धर्मका आचरण करते हैं तो भगवान् हमारे ऊपर जरूर प्रसन्न होंगे. यही कारण है कि हमें धर्मका आचरण करना चाहिये. आखिर प्रभुकी प्रसन्नतामें ही तो

हमारी आत्माका सच्चा उत्कर्ष हो सकता है!

सम्प्रदाय

सद्विद्या प्राप्त करनेकी इच्छावालेको अच्छे विद्यालयमें प्रवेश प्राप्त करके विद्वान् अध्यापकके पास मेहनत और लगन से पढ़ना आवश्यक होता है. उसी तरह अगर धर्मका ज्ञान प्राप्त करना हो तो जहां निस्वार्थ भावसे धर्मका सच्चा ज्ञान दिया जाता हो उस मार्ग या सम्प्रदाय में जाकर, योग्य गुरुसे दीक्षा लेकर, गुरुके पास धर्मसंबंधी जिज्ञासा करते हुवे ज्ञान प्राप्त करना चाहिये. किसी और प्रकारसे धर्मकी सच्ची समझ कहीं भी मिल नहीं सकती है.

हमारे देशके अनेक धर्ममार्ग या सम्प्रदाय उतने ही प्राचीन हैं जितनी कि प्राचीन खुद भारतीय संस्कृति है. आज यह गलत धारणा प्रचारित की जा रही है कि भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदायोंसे हमारी सामाजिक एकता भंग होती है. वैसे तो कुर्सीके प्रेमी राजनीतिज्ञ नेता अक्सर भाषा प्रांत जिला जाति मजदूर किसान कर्मचारी विद्यार्थी आदिवासी आदि किसी भी समुदायको भड़का कर समाजमें आपसी द्वेष कलह अशांति फैला देते हैं, तो क्या भाषा प्रांत आदि सभी वर्गोंको सामाजिक एकताको विखंडित करनेवाले तत्त्व मान लेने चाहियें! अगर मान भी लें तो इनसे छुटकारा कैसे पाया जा सकता है? सच देखा जाय तो विभिन्न सम्प्रदाय धर्मसंबंधी प्रशिक्षण देनेके केन्द्र हैं. ये ऐसे विद्यालय हैं जिनसे समाजकी नैतिक उन्नतिके साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी होती है. इन सम्प्रदायोंके होनेसे समझदार व्यक्तिको तो समाजमें धर्मकी व्यापक आवश्यकता और समृद्धि का ही अनुभव होता है न कि विखण्डितता या विभाजन का.

वस्तुतः ये सभी शास्त्रीय सम्प्रदाय भगवदाज्ञासे भिन्न-भिन्न स्वभावोंवाले मनुष्योंकेलिये निर्मित हुवे हैं. सभी सम्प्रदायोंके कार्यक्षेत्र अलग-अलग हैं. इसलिये किसी एक सम्प्रदायका,

अपने आदर्श रूपमें तो, किसी दूसरे सम्प्रदायसे टकराव, विरोध या प्रतिस्पर्धा का तो सवाल ही उठना नहीं चाहिये. उदाहरणतया भारत भरमें असंख्य विद्यालय हैं जो कि भिन्न-भिन्न विषयोंका प्रशिक्षण विभिन्न वर्ग और समुदाय के लोगोंको देते हैं. इन असंख्य विद्यालयोंसे जब हमारे समाजकी एकता और अखंडितता को धक्का नहीं पहुंचता तब उंगलियोंपर गिने जा सकनेवाले हमारे धर्मविद्यालयों(सम्प्रदायों)से समाजकी एकता या अखण्डितता को क्या खतरा हो सकता है ? इसलिये हमें समझना चाहिये कि भारतीय धर्म-सम्प्रदायोंकी परंपरा संकुचितता या विभाजन का प्रतीक न होकर धर्मकी सनातन और व्यापक आवश्यकताकी प्रतीक हैं. अगर इस विविधतामें समायी हुयी व्यापकताकी ओर हम देखें तो भय या संदेह का कोई कारण ही नहीं रह जाता. इस तरह हमने धर्म-सम्प्रदायोंके सच्चे स्वरूप और महत्त्व को समझा.

जैसे हमने देखा कि सभी शास्त्रीय सम्प्रदाय किसी खास उद्देश्यसे किसी खास वर्गके लोगोंकेलिये भगवान्‌की आज्ञासे प्रवर्तित हुवे हैं, इस नाते सभी सम्प्रदाय अपने आपमें परिपूर्ण हैं, आवश्यक हैं तथा अच्छे हैं. जब हमें अपने आत्मोत्कर्षके लिये किसी धर्मसम्प्रदायमें जानेकी इच्छा हो तब हमारेलिये कौनसा धर्म-सम्प्रदाय सही है इसका निर्णय हम कैसे करेंगे ?

बहोत सरल बात है— जैसे कोई विद्यार्थी विज्ञानमें रुचि रखता है और विज्ञानके क्षेत्रमें उसे आगे बढ़नेकी इच्छा भी है, तब वह क्या करेगा? यही कि जिस विद्यालयमें उसकी रुचिका विषय अच्छे ढंगसे पढ़ाया जाता हो उस विद्यालयमें वह प्रवेश प्राप्त करना चाहेगा. इसी प्रकार प्रभुप्राप्तिका रुचिकर उपाय हमें जिस सम्प्रदायमें सिखाया जाता हो उस धर्म-सम्प्रदायमें हमें प्रवेश करना चाहिये. पर यह ध्यान रहे कि जैसे समझदार विद्यार्थी मान्यताप्राप्त विद्यालयमें ही प्रवेश करता है, वैसे हमें भी देखना होगा कि जिस सम्प्रदायमें हम प्रवेश करने जा रहे हैं, वह

हमारे भारतीय सनातन-धर्मके आधारस्वरूप वेदादि शास्त्रोंसे विरुद्ध तो नहीं? दूसरी बात— आजकल फूट पड़े तथाकथित धर्मनिरपेक्षतावादिओं, सर्वधर्मसमतावादिओं या साम्प्रदायिकताके विरोधिओं के बहकावेमें आकर हमें एक साथ दो या अधिक सम्प्रदायोंमें पांव रखनेकी गलती कभी नहीं करनी चाहिये. क्योंकि एक साथ दो नावोंमें पांव रखनेवाला यात्री कभी पार नहीं पहुंच पाता.

गुरु

ज्ञान, जैसे, सच्चे गुरुके बिना प्रायः नहीं मिल पाता, वैसे ही गुरुके बिना किसी धर्म-सम्प्रदायमें प्रवेश भी नहीं मिल पाता है. यही कारण है कि गुरुका स्थान हमारे जीवनमें बहोत महत्त्वपूर्ण है. 'गुरु' उसे कहते हैं जो जिज्ञासु शिष्यको मन्त्रदीक्षा देकर सम्प्रदायके सिद्धांतोंका संपूर्ण ज्ञान कराये. श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं :

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अर्थ : अज्ञानरूप अंधकारसे जो आंखें अन्धी हो गयी हों उन आंखोंको ज्ञानोपदेशरूप अंजनशलाकासे खोलनेवाले श्रीगुरुको नमस्कार हो.

हमारे सम्प्रदायको 'पुष्टिभक्तिमार्ग' कहा जाता है. पर क्या आप जानते हैं कि हमारे इस दिव्य मार्गके प्रवर्तक और हम सभीके गुरु कौन हैं?

श्रीवल्लभाचार्यजी

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ही हमारे इस 'पुष्टिभक्तिमार्ग'के प्रवर्तक और हम सभीके गुरु हैं.

प्रभुको प्रिय ऐसे कितने ही दैवी जीव जब प्रभुप्राप्तिका सरल-सीधा उपाय खोज न पानेसे दुःखी थे, तब प्रभुने श्रीमहाप्रभुजीको पृथ्वीपर भेजते हुवे आज्ञा दी : "मेरे प्रिय पुष्टिजीवोंको मेरी प्राप्तिका उपाय बताकर उनका उद्धार करो"

प्रभुकी आज्ञा पाकर श्रीमहाप्रभुजी पृथ्वीपर अवतीर्ण हुवे और दैवीजीवोंके उद्धारार्थ पुष्टिभक्तिमार्गका प्रवर्तन किया. इसी कारण श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रमें श्रीमहाप्रभुजीको 'दैवोद्धारप्रयत्नात्मा' कहा गया है. पुष्टिभक्तिमार्गके साथ-साथ आपने ऐसे शरणमार्गका भी उपदेश दिया जो भक्तिमार्गका सहायक होनेके अलावा भगवत्प्राप्तिका स्वतन्त्र उपाय भी है. इसलिये श्रीमहाप्रभुजीको 'पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा' और 'भक्त्याचारोपदेष्टा' नामोंसे भी पहचाना जाता है. भगवान् श्रीकृष्ण सभी देवी-देवताओंसे बड़े हैं, उन्होंने ही इस समस्त जगतको बनाया है, जगत्की हर जड़-चेतन वस्तु वे खुद ही बने हैं, फिर भी वे सबसे अलग भी हैं— ऐसे विलक्षण मतके स्थापन करनेके कारण आप 'साकाराब्रह्मवादैकस्थापकः' नामसे भी जाने जाते हैं. भगवन्मुखारविंदस्वरूप अग्निके अवतार श्रीमहाप्रभुजी सभी दैवीजीवोंको प्रिय हैं, अतः उन्हें "वैश्वानरो वल्लभाख्यः" नाम भी दिये गये हैं. श्रीमहाप्रभुजीसे पहले किसीने नहीं दिया ऐसा, श्रीकृष्णके विलक्षण पुरुषोत्तमस्वरूपका, ज्ञान श्रीमहाप्रभुजीने हमें दिया है. अतः आप 'श्रीकृष्णज्ञानदो गुरुः' नामोंसे पहचाने जाते हैं. भविष्यमें भी पुष्टिभक्तिमार्गका प्रचार होता रहे इसके लिये आपने भगवदाज्ञासे विवाह किया था. आपके यहां दो पुत्ररत्नोंका प्राकट्य हुआ— बड़े श्रीगोपीनाथजी और छोटे श्रीगुसांईजी. इस लिये श्रीगुसांईजीने आपको "भुवि भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृत् पिता" कहा है.

श्रीगोपीनाथजी

श्रीमहाप्रभुजीके बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजीके स्वरूपका वर्णन करते हुवे श्रीपुरुषोत्तमजी अपने एक मंगलाचरणमें लिखते हैं :

श्रीवल्लभप्रतिनिधिं तेजोराशिं दयार्णवम्।
गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथमाश्रये॥

अर्थ : श्रीमहाप्रभुजीके प्रतिनिधि, तेजके भंडार, दयाके सागर, गुणातीत और अलौकिक सर्वगुणवान् श्रीगोपीनाथजीका

मैं आश्रय लेता हूं.

इसी प्रकार श्रीगुसांईजी भी अपने बड़े भाई श्रीगोपीनाथजीको वंदन करते हुवे मंगलाचरणमें लिखते हैं :

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत्।
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम्॥

अर्थ : जिनकी कृपासे प्राणीमात्रके सब दुःख दूर हो जाते हैं ऐसे श्रीवल्लभनन्दन श्रीगोपीनाथजीको मैं प्रणाम करता हूं.

श्रीगोपीनाथजी अपनी बाल्यावस्थासे ही प्रभुसेवा-स्मरणमें तत्पर रहते थे. अठारह हजार श्लोकवाले श्रीभागवतका पाठ करके ही प्रसाद लेना ऐसा आपका नियम था. इस नियमके कारण पाठमें विलंब होनेपर कभी-कभी तो आप दो-तीन दिन बाद प्रसाद ले पाते थे. ऐसा होनेसे माताको बहुत दुःख होता था. यह देखकर श्रीमहाप्रभुजीने श्रीगोपीनाथजीकेलिये समग्र भागवतके साररूप 'श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्र'की रचना की.

श्रीमहाप्रभुजीके इहलीलासंवरणके बाद सम्प्रदायका आचार्यपद श्रीगोपीनाथजीने संभाला. स्वमार्गके सिद्धांतोंको समझानेकेलिये आपने 'साधनदीपिका' नामक एक सुंदर लघुग्रंथकी रचना भी की. प्रभुसेवाके साथ-साथ श्रीमहाप्रभुजीकी तरह आपको वैदिक धर्मका भी आग्रह था.

श्रीगुसांईजी

श्रीमहाप्रभुजीके दूसरे पुत्र श्रीगुसांईजी भी अपने बड़े भाईकी तरह बचपनसे ही भगवत्सेवापरायण थे. आपका नाम श्रीविट्ठलनाथजी होनेपर भी सम्प्रदायमें आप 'श्रीगुसांईजी' या 'श्रीप्रभुचरण' नामसे प्रसिद्ध हैं.

आप जब बहोत छोटी उंम्रके थे तब श्रीमहाप्रभुजीने श्रीबालकृष्णलालका एक छोटासा स्वरूप आपको पधरा दिया था. श्रीगुसांईजीको नित्य एक ठोर भी मिलता था. एक दिन श्रीगुसांईजीने श्रीठाकुरजीको मंगलभोगमें ठोर धरा और

श्रीठाकुरजी श्रीगुसांईजीके सामने ही ठोर अरोगने लगे! यह देखकर श्रीगुसांईजीने सोचा कि यदि पूरेका पूरा ठोर श्रीठाकुरजी अरोग जायेंगे तो मेरेलिये तो कुछ बचेगा ही नहीं! यह सोचकर आपने लपककर श्रीठाकुरजीके श्रीहस्तमेंसे ठोरको पकड़ लिया. अब तो दोनोंके बीच छीना-झपटी होने लगी. इस दृश्यको श्रीमहाप्रभुजीने देखा और आप बहोत प्रसन्न हुवे. बादमें आपने दूसरा ठोर मंगवाकर श्रीगुसांईजीको देते हुवे कहा — "ये लड़ाकू ठाकुर हैं; इनसे जीत नहीं पाओगे!" ऐसे अद्भुत चरित्रवाले श्रीगुसांईजी बड़े होकर सम्प्रदायके बड़े प्रतापी आचार्य हुवे.

श्रीगोपीनाथजीके इहलीला-संवरणके बाद सम्प्रदायका आचार्यपद संभालकर मार्गके प्रचार-प्रसारमें आप निरंतर तत्पर रहे. इसी कारण 'नामरत्नाख्यस्तोत्र'में श्रीगुसांईजीके पुत्र श्रीरघुनाथजीने आपको 'पितृप्रवर्तितपथप्रचारसुविचारकः' कहा है. आजीवन गाय और ब्राह्मण की रक्षा करनेवाले एवं सत्यके मार्गपर चलनेवाले होनेसे आपको "गोब्राह्मणप्राणरक्षापरः सत्यपरायणः" कहा गया. मार्गके सिद्धांतोंका ज्ञान देनेकेलिये आपने बहोतसे स्तोत्र, व्याख्या और स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की.

श्रीयमुनाजी

भगवान् श्रीकृष्णने व्रजभूमिमें पधारकर श्रीयमुनाजीके तटपर अनेक अद्भुत लीलायें की, क्योंकि श्रीयमुनाजी प्रभुको बहोत प्रिय हैं. दैवी पुष्टिजीवोंकेलिये तो वे माताके समान हैं. ऐसे श्रीयमुनाजी यमराजकी बहन हैं. इसी कारणसे श्रीमहाप्रभुजीने 'श्रीयमुनाष्टकम्' स्तोत्रमें लिखा है —

नमोस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतम्
न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः।
यमोपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः॥

अर्थ : यदि हम भक्तिभावसे श्रीयमुनाजीके जलका पान

करते हैं तो चाहे हम कितने भी दुष्ट क्यों न हों पर हमें यमराजका भय नहीं रह जाता. क्या यमराज अपनी बहनके पुत्रोंको परेशान कर सकते हैं! ऐसे श्रीयमुनाजी यदि हमारे ऊपर कृपा करते हैं तो उनके सेवनसे हम भी प्रभुके प्रिय हो सकते हैं, जैसे व्रजके गोप-गोपी प्रभुको प्रिय हुए थे. ऐसे अद्‌भुत् चरित्रवाले श्रीयमुनाजीको सदा नमस्कार हो.

श्रीयमुनाजीको प्रणाम करते हुवे अब हमें अपने आराध्य देव भगवान् पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्णके स्वरूपको समझ लेना चाहिये.

श्रीकृष्ण

गीतामें भगवान्‌ने अपने स्वरूपको इस प्रकार समझाया है:

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।
मत्तः परतरं नान्यद् किंचिदस्ति धनंजय॥

अर्थ: मेरेमेंसे ही यह समस्त जगत् प्रकट हुआ है और अंतमें मेरेमें ही यह जगत् लीन हो जायेगा. मुझसे बड़ा इस जगत्‌में कोई नहीं है.

प्रभुने अपने आनन्द (क्रीड़ा/लीला) केलिये यह जगत् बनाया है. सभी देवी-देवता, जीव-जंतु, मनुष्य और जड़ वस्तु प्रभुके इस खेलके खिलौने हैं. दुर्गा, गणपति, शिवजी जैसे देवी-देवता भी श्रीकृष्णको अपना स्वामी मानकर उनकी भक्ति करते हैं. इसीलिये श्रीमहाप्रभुजी 'सिद्धान्तमुक्तावली' ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं:

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि।

अर्थ: 'परब्रह्म' अर्थात् सर्वाधारभूत तत्व तो श्रीकृष्ण ही हैं.

प्रभुने जब देखा कि उनके भक्तजन पृथ्वीपर उनके न प्रकट होनेसे दुःखी हैं, दुष्ट लोगोंका उपद्रव बढ़ता जा रहा है, धर्मपर अधर्मका जोर बढ़ रहा है, तब दैवी

जीवोंपर कृपा करके आप पृथ्वीपर प्रकट हुवे. भक्तोंके उद्धारकेलिये अपने धाम वैकुंठसे प्रभु जब पृथ्वीपर पधारते हैं तब "प्रभुका अवतार हुआ" कहा जाता है. हमारे घरोंमें जो श्रीठाकुरजी पधारकर हमें उनकी सेवाका अवसर देते हैं उसे भी हमारे घरमें प्रभुका अवतार ही मानना चाहिये. इस प्रकार प्रभु अवतार धारण करके श्रीनंदरायजीके घर व्रजमें पधारे. व्रजके निष्कपट, निष्काम और भोले गोप-गोपिकाओंको अपनी सेवा-परिचर्या-दर्शनका अवसर देकर आपने उन्हें कृतार्थ किया. व्रजमें अनेक राक्षस और दुष्टों का भय था. श्रीकृष्णने अपने बलसे सभी दुष्टोंको मार-भगाकर व्रजवासिओंको भयसे मुक्त किया. भगवान् अपने भक्तोंके थोड़े भी दुःखको सहन नहीं कर पाते हैं. जब भी भक्तपर दुःख आ पड़ता है, भगवान् सब कुछ छोड़कर भक्तकी सहायताको दौड़ आते हैं. इसी कारण श्रीमहाप्रभुजी 'चतुश्लोकी' ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं:

प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिंततां व्रजेत्।

अर्थ: प्रभु श्रीकृष्ण सब कुछ करनेको समर्थ हैं. तब फिर भक्तोंको निश्चिंत हो ही जाना चाहिये.

अजामिल एक दुष्ट पापी था. उसका एक बेटा था जिसका नाम 'नारायण' था. अजामिलने कोई अच्छे काम नहीं किये थे, पर उसे अपने बेटेसे बहोत प्यार था. इसलिये जब वह मृत्युशय्यापर लेटा था तब उसने अपने बेटेको नाम लेकर पुकारा और उसके प्राण छूट गये. वह पापी था पर भगवान्‌ने उसे मुक्ति दे दी. क्योंकि बेटेके नामसे ही सही, पर, उसने एक बार भगवान्‌का नाम तो लिया था न! पूतना तो श्रीकृष्णको मारने ही आई थी. परंतु, चाहे ढोंगसे ही सही, उसने दूध तो माताकी ही तरह भगवान्‌को पिलाना चाहा था! इसलिये भगवान्‌ने उसे भी मुक्ति दे ही दी! ऐसे महान् हैं हमारे स्वामी श्रीकृष्ण! चाहे हम कितने भी पापी क्यों न हों, कितने ही दुःखी या निःसाधन क्यों न हों, यदि सच्चे

हृदयसे एक बार भी हम प्रभुसे कह देते हैं कि "हे प्रभु! मैं आपके शरणमें हूं, आपके सिवा मेरा सच्चा सगा कोई नहीं है", तो वे हमें अपनी शरणमें ले लेते हैं. श्रीमहाप्रभुजी 'श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्र'में आज्ञा करते हैं:

पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम।

भाव: सुखी हो या दुःखी हो, पापी हो चाहे निष्पाप हो, धनवान् हो या निर्धन हो, साधनसंपन्न हो या निःसाधन हो; सभीको देवोंके देव दयालु सर्वशक्तिमान् सर्वकारण ऐसे श्रीकृष्ण ही की शरणमें जाना चाहिये. उन्हींकी भक्ति करनी चाहिये. यही कारण है कि हम श्रीकृष्णकी शरणमें जाते हैं, श्रीकृष्णकी ही भक्ति करते हैं.

इस प्रकार परमात्मा श्रीकृष्णका स्वरूप समझकर अब हमें हमारा अर्थात् जीवात्माका और जड़ जगत्का स्वरूप भी समझ लेना होगा.

जीव-जगत्

सांस चलनेकी प्रक्रिया जिसमें न हो ऐसी वस्तुको 'जड़' कहा जाता है, जबकि सांस चलनेकी प्रक्रियावाले पशु-पक्षी, मनुष्यको 'जीव' कहा जाता है. पृथ्वी, पानी, प्रकाश, वायु और आकाश जड़ होते हैं. इन जड़-जीवोंको जब हम देखते हैं तब हमें इनमें कहीं परमात्मा दिखलायी नहीं देता या ये सब परमात्मासे जुड़े हुए हों ऐसा कोई संबंध भी दिखलायी नहीं देता. सब कुछ स्वतन्त्र ही लगता है. पर सचमुचमें देखा जाये तो इस जगत्में कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णसे जुड़ी हुयी न हो. क्योंकि जब सब कुछ भगवान् खुद ही बने हैं, जैसा कि गीताके वचनसे हमने समझा, तब जड़ और जीव भगवान्से अलग कैसे हो सकते हैं? क्या मिट्टी और घड़े को या पेड़ और पत्तों को हम अलग कर पायेंगे? हमें इस बातको और अच्छी तरहसे समझना होगा.

उपनिषदोंमें ब्रह्मको सत्, चित् और आनन्द— ऐसे तीन धर्मोंवाला बताया गया है. यहां 'सत्'का मतलब है अस्तित्व या किसी वस्तुका होना. 'चित्'का अर्थ है चैतन्य. 'आनन्द'का अर्थ होता है: अनन्तता, व्यापकता या अप्राकृत-अलौकिक धर्म.

परमात्मा जब अपने चित् और आनन्द गुणोंको छुपाकर केवल सत् गुणसे प्रकट होता है तब परमात्माके उस प्रकट रूपको 'जड़'नामसे पहचाना जाता है. और जहां परमात्मा अपने आनन्द गुणको छुपाकर सत्-चित् गुणोंके साथ प्रकट होता है तब परमात्माके उस प्रकट रूपको 'जीव' कहा जाता है.

अग्निमेंसे जैसे चिनगारी निकलती हैं, वैसे हम सब जीव और यह जड़ जगत् भगवान् श्रीकृष्णसे अनगिनत सालों पहले अलग हुवे हैं. अग्निकी तुलनामें चिनगारी छोटी होती है. उसकी चमक और गरमी भी कम होती है. इसी तरह हम सब जीव भगवान्की तुलनामें एक छोटीसी चिनगारी जैसे हैं. पर क्योंकि हम भगवान्मेंसे ही उत्पन्न हुवे हैं इस नाते हम भगवान्की संतान हैं. इसी कारण हम जीवोंको भगवान्का 'अंश' कहा जाता है और भगवान्को 'अंशी'. श्रीकृष्ण स्वयं गीतामें आज्ञा करते हैं:

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतो।

अर्थ: इस जगत्में जो जीव बना है, वह मेरा ही अंश है.

कितना अपनापन है भगवान्के इस वचनमें! जैसे पिता अपने पुत्रोंकेलिये कहता हो: "ये मेरी संतानें हैं!" ऐसे पुत्रवत्सल परमपिता परमात्माकी सेवा करना क्या हमारा कर्तव्य नहीं है? पर सब ऐसा समझ कहां पाते हैं!

स्वयं अपनेमेंसे बनाये हुवे इस जगत्में, प्रभुने सभी जीवोंको किसी न किसी तरहकी लीलाकेलिये बनाया है. किसीको बुरे कामोंकेलिये तो किसीको अच्छे. इन जीवोंमें कुछ ऐसे भी जीव हैं जिन्हें प्रभुने अपना प्रिय बनाया

है. इन जीवोंको श्रीमहाप्रभुजी 'पुष्टिजीव' कहते हैं.

प्रभुसे अलग हो जानेसे हम सभी जीव अज्ञानके कारण अपना-अपना कर्तव्य और स्वरूप भूल गये हैं. भूला-भटका अनभिज्ञ आदमी उलटा-सीधा कुछ भी करने लग जाता है. ऐसी ही स्थिति हम सब जीवोंकी है पर यदि सही रास्तेपर चलना है तो हमको यह जानना होगा कि प्रभुने हमें किस कार्यकेलिये पृथ्वीपर भेजा है. यह हम तभी जान पाते हैं, जब प्रभु स्वयं हमको इसका ज्ञान दें या कोई महापुरुष हमें बतलाये. श्रीमहाप्रभुजी हमारी इस विषयमें सहायता करते हैं.

अगर आप पुष्टिजीव हैं तो इस लीलाजगत्में आप जैसे पुष्टिजीवोंका कर्तव्य बताते हुवे श्रीमहाप्रभुजी 'पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद' ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं:

भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः।

अर्थ: पुष्टिजीवोंको प्रभुने खास अपनी स्वरूपसेवाकेलिये बनाया है.

प्रभुसे जुदा होनेके कारण प्रभुसेवारूप स्वकर्तव्यको पुष्टिजीव भूल ही चुके थे. कलिकालके कारण प्रभुसेवाका मार्ग भी दिखलायी देना बंद हो गया था. ऐसे समयमें पुष्टिजीवोंके उद्धारकेलिये प्रभुने श्रीमहाप्रभुजीको 'पुष्टिभक्तिमार्ग' प्रकट करने की आज्ञा दी.

यहां हमें यह समझना होगा कि हमारे इस मार्गको 'पुष्टिभक्तिमार्ग' क्यों कहा जाता है?

पुष्टि-भक्ति-मार्ग

सबसे पहले हम 'पुष्टि' शब्दका अर्थ समझ लेते हैं. भागवतमें कहा गया है:

पोषणं तदनुग्रहः।

अर्थ: 'पुष्टि'का अर्थ होता है भगवान्की कृपा.

प्रभु तो कृपावान् होनेके कारण कितनी ही तरहसे जीवोंपर कृपा करते हैं. जैसे कोई विद्यार्थी पढ़ाईमें ध्यान

न रखता हो, अध्यापकका कहा न मानता हो उसे अध्यापक पाठशालामें पीछेकी ओर बिठाते हैं. जो विद्यार्थी ध्यान देकर पढ़ता हो, कहा मानता हो तो अध्यापक उसपर खुश होकर सबसे आगे बिठाते हैं. उसी प्रकार प्रभु भी जीवोंपर साधारण-विशेष या ज्यादा-कम कृपा करते हैं. पर यह ध्यान रहे कि प्रभुकेलिये तो सभी जीव समान ही हैं. कृपाका ज्यादा-कम होना तो प्रभुकी लीलाका एक अंग मात्र है. अतः जो पुष्टिजीव किसी भी प्रकारके स्वार्थ बिना, सब कुछ छोड़कर, केवल प्रभुके शरणमें आते हैं, ऐसे पुष्टिजीवोंपर प्रभु विशेष कृपा करके उन्हें अपनी सेवाका सौभाग्य देते हैं. इस कृपाको श्रीमहाप्रभुजी 'पुष्टिका अंकुरण' कहते हैं.

प्रभुकी 'पुष्टि' जिन जीवोंपर हो जाती है उन्हें फिर किसी भी तरहकी चिंता रह नहीं जाती. अपनी पुष्टिसे प्रभु स्वयमेव उस पुष्टिजीवका ऐहिक-पारलौकिक सम्हाल लेते हैं. ऐसा जीव कभी किसी कारणसे प्रभुसेवा न कर पाता हो तो प्रभु खुद उसकेलिये सेवा करने योग्य परिस्थितिका निर्माण कर देते हैं. इस लिये श्रीमहाप्रभुजी 'सिद्धान्तमुक्तावली'ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं:

अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामकः।

अर्थ: पुष्टिभक्तिमार्गपर चलनेवाले जीवोंके इहलोक और परलोक अथवा साधना और फलके बारेमें केवल भगवदनुग्रह(कृपा)ही नियामक होता है.

इसलिये जहां प्रभुकी कृपासे ही भक्तका सब कुछ होता हो वही पुष्टिमार्ग है. यदि हम ऐसा कहते हैं कि "प्रभुकी कृपा प्राप्त करनेका मार्ग पुष्टिमार्ग है" तो पुष्टिमार्गको समझनेमें हमने भूल की है. क्योंकि इस मार्गमें प्रवेश पानेकी पहली शर्त है हमारे ऊपर प्रभुकृपाका होना. जिन जीवोंपर प्रभुकी कृपाका निश्चय न होता हो उन्हें तो इस मार्गमें लाना ही नहीं चाहिये — ऐसा स्पष्ट आदेश गुरुओंको है. अतः कृपाभाजन जीवके पुष्टिमार्गमें आ ही जानेके बाद

और कौनसी कृपा प्राप्त करनी रह जाती है! अब तो उसे कृष्णसेवा ही करनी है. इस तरह हमने समझा कि हमारे मार्गको 'पुष्टिमार्ग' या 'कृपाका मार्ग', क्यों कहा जाता है. अब हम यह समझेंगे कि 'पुष्टि-भक्ति-मार्ग'का अर्थ क्या होता है.

हम सभीके मनमें ऐसी इच्छा होती है कि जो भी कुछ हमारे दुःख हैं वह दूर हो जायें और हमें सुखकी प्राप्ति हो. दुःखाभाव और सुखप्राप्ति की हमारी कामनाको **'पुरुषार्थ'** कहा जाता है. इन कामनाओंको पूर्ण करनेकेलिये हम बहोतसे साधन करते हैं. सभी पाप नष्ट हों और मोक्ष मिल जाये यह सभी चाहते हैं. कोई यज्ञ-कर्म करता है. कोई जप-तप करता है. कोई तीर्थयात्रा या व्रत करता है. सुखप्राप्तिकेलिये कोई काम्यकर्म-व्रत-दान आदि करता है तो कोई धनप्राप्तिका उपाय करता है. परंतु जो सच्चा पुष्टिभक्त है उसे न तो मोक्षकी कामना होती है और न ही स्वर्ग या धन की. वह तो प्रभुभक्तिमें अपने सब दुःखोंको भूलकर अलौकिक सुखका अनुभव ही करता रहता है. उसके सब पुरुषार्थ भगवत्स्वरूपके बारेमें अथवा भगवद्भक्तिमें ही पूर्ण हो जाते हैं. प्रभुकी सेवा ही उसका **धर्म** है. स्वयं प्रभु ही उसके सच्चे **धन**(अर्थ) हैं. प्रभुके दर्शनकी कामना ही उसकी सहज **कामना** होती है. और वह सदा प्रभुका सेवक बना रहे यही उसकेलिये श्लाघ्य **मोक्ष** होता है. यही कारण है कि हमारे इस मार्गको 'पुष्टि-भक्ति-मार्ग' कहा जाता है.

सभी धर्म-संप्रदायोंकी कुछ मौलिक धारणायें होती हैं. ये मौलिक धारणायें ही उन संप्रदायोंका आधार भी होती हैं. हमें अब यह विचार करना होगा कि हमारे पुष्टिभक्तिमार्गकी मौलिक धारणायें क्या हैं?

भगवदाश्रय

प्रभुका अनन्य दृढ़ आश्रय हमारी पुष्टिभक्तिका आधार है. आश्रयके बिना पुष्टिभक्तिकी कल्पना भी नहीं की जा

सकती. नदीके तेज प्रवाहमें बहते हुवे आदमीके हाथमें जब अकस्मात् लकड़ीका तख्ता आ जाता है, तब उसको विश्वास हो जाता है कि अब वह बच जायेगा. इसी प्रकार जब यह लौकिक अहंता (मैं) ममता (मेरे) का संसार, हमें शोक-मोहकी ओर बहा ले जानेवाली तूफानी नदीके जैसा लगने लगे और ऐसेमें हम भगवत्-शरणागतिको याद करके निश्चिंत हो पायें— ऐसा दृढ़ आश्रय-विश्वास मनमें हो जाये तभी सच्ची पुष्टिभक्ति हो सकती है. एक बच्चा अपने माता-पितापर भरोसा रखकर सभी चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है. सुखके और दुःखके सभी क्षणोंमें एक बच्चेको अपने माता-पिताकी ही याद आती है. उसी प्रकार हम भी अगर दूसरे देवी-देवता तथा यज्ञ-तीर्थ-मन्त्रादि साधनोंका आश्रय छोड़कर केवल श्रीकृष्णके आश्रयमें चले जाते हैं तो प्रभु हमारे सभी दुःखोंको दूर कर देते हैं. भगवान्ने गीतामें ऐसा ही अभयवचन अर्जुनको दिया है:

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अर्थ: तू सब कुछ छोड़कर मेरे शरणमें आ जा. मैं तेरा सब कुछ सम्हाल लूंगा.

श्रीमहाप्रभुजी भी 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं:

ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः।

अर्थ: इस लोकमें मेरा क्या होगा या मृत्युके बाद मेरा क्या होगा— ऐसी सभी चिन्ताओंको छोड़कर एक श्रीकृष्णकी ही शरणमें जाना चाहिये.

हमारा सब कुछ करनेवाले श्रीकृष्ण ही हैं और कोई नहीं— ऐसा विश्वास रखते हुवे जब उनकी शरणमें हम जाते हैं, तब श्रीकृष्णका सच्चा आश्रय सिद्ध हुवा मानना चाहिये. भक्त ध्रुव, प्रह्लाद, गजेन्द्र हाथी, पाण्डव और द्रौपदी ने सब कुछ छोड़कर केवल श्रीकृणका आश्रय लिया तो उन्हें श्रीकृष्णकी प्राप्ति हुई और सब दुःख भी दूर हुवे.

इस प्रकार भगवदाश्रयकी उपकारकता समझनेके बाद पुष्टिभक्तिमार्गके सबसे बड़े अपराध अन्याश्रयकों भी समझ लेना चाहिये.

अन्याश्रयत्याग

अनेक देवोंका आश्रय करनेपर क्या होता है, इसे हम एक कहानीके द्वारा समझ सकते हैं.

एक वृद्धा किसी नदीमें नहाने गई. नहाते हुवे अचानक उसका पांव फिसला और वह डूबने लगी. कोई भी देवता आकर उसको बचा ले ऐसा सोचकर वह एकके बाद दूसरे देवताका नाम पुकारने लगी. गणेशजी, शिवजी, हनुमानजी और ऐसे बहोत सारे देवताओंको सहायताकेलिये उसने पुकारा. देवता भी अपना-अपना नाम सुन-सुनकर वृद्धाको बचाने चले, पर जैसे ही एक देव उठकर आते इतनेमें वृद्धा दूसरे देवका नाम पुकारने लग जाती. यह देखकर पहलेवाले देव वापस लौट जाते. ऐसा करते-करते वह वृद्धा तो डूब ही गयी. बहोतसे देवोंको बुलानेके चक्करमें कोई भी देवता उसे बचा न पाया! इस कहानीसे हम समझ सकते हैं कि अगर वृद्धाने किसी एक देवको बचानेकेलिये पुकारा होता तो वह शायद बच भी जाती. एक साथ बहोत सारे देवोंका आश्रय करनेपर किसीकी भी इस वृद्धा जैसी दशा सहज ही संभव है. इसलिये किसी एक देवका आश्रय करनेके बाद और किसी देवी-देवताका आश्रय पूजन या उससे किसी भी प्रकारकी याचना नहीं करनी चाहिये.

हमारे आराध्य देव तो देवाधिदेव श्रीकृष्ण ही हैं. ऐसे श्रीकृष्णका आश्रय छोड़कर और देवी-देवताओंका आश्रय हमें कभी नहीं करना चाहिये. इस बातको समझानेकेलिये 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं:

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थनाकार्यमात्रेपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत्॥

अर्थ:—

(१) श्रीकृष्णके सिवा और किसी भी देवी-देवताकी सेवा-पूजा चलाकर नहीं करनी चाहिये.

(२) जान-बूझकर खुदकी इच्छासे किसी देवी-देवताके दर्शनको नहीं जाना चाहिये.

(३) किसी भी देवी-देवतासे स्वतः कभी कुछ भी मांगना नहीं चाहिये.

श्रीमहाप्रभुजीके इस अन्याश्रयत्यागके उपदेशको हमें दूसरे देवी-देवताओंके अनादरके अर्थमें न लेकर, हमारे आराध्य श्रीकृष्णके आश्रयको दृढ़ रखनेके अर्थमें ही समझना चाहिये. क्योंकि श्रीमहाप्रभुजी स्वयं आज्ञा करते हैं कि शिव, दुर्गा, गणपति आदि देवी-देवता श्रीकृष्णके भक्त हैं और श्रीकृष्णकी आज्ञासे ही वे अपने-अपने कार्य करते हैं. अतः श्रीकृष्णभक्त होनेके नाते वे सभी हमारे लिये आदरणीय हैं पर भजनीय तो सर्वदेवपूज्य श्रीकृष्ण ही हैं.

इस प्रकार हमनें अन्याश्रयत्यागका स्वरूप समझा. अब हम शरणदीक्षाका विचार करते हैं.

शरणदीक्षा

जैसे किसी विद्यालयमें प्रवेश पानेकेलिये विद्यार्थीको प्रवेश-पत्र भरना पड़ता है. जब वह स्वीकृत हो जाता है तब जाकर उसे विद्यालयमें अध्ययन करने दिया जाता है. वैसे ही अगर किसी धर्म-संप्रदायमें प्रवेश प्राप्त करना हो तो उस संप्रदायकी मन्त्रदीक्षा लेनी बहोत जरूरी होती है. हमारे शास्त्रोंमें कहा गया है कि दीक्षा लिये बिना अगर कोई कुछ भी करता है तो उसका किया-धरा सब निरर्थक हो जाता है. अतः दीक्षा लेना अनिवार्य है.

दीक्षाका प्रयोजन होता है : (१) मार्गमें आनेवालेकी योग्यताको जानना ताकि अयोग्य व्यक्ति संप्रदायमें घुस न जाये और (२) संप्रदायमें आनेवाला स्वमार्गीय साधनाप्रणालीके अनुरूप पवित्र हो पाय.

पुष्टिभक्तिमार्गमें प्रवेश पानेकेलिये प्रथम दीक्षा

'शरणमन्त्र'की दी जाती है. इसे 'अष्टाक्षर' या 'नामदीक्षा' भी कहा जाता है. अष्टाक्षरमन्त्र पुष्टिभक्तिमार्गका शरणदीक्षामन्त्र है. इस मन्त्रमें आठ अक्षर होनेसे इसे 'अष्टाक्षरमन्त्र' कहा जाता है.

हमने देखा कि शरणदीक्षाका एक प्रयोजन मार्गमें आनेवालेकी योग्यताको जानना है. जैसे किसी विद्यार्थीको प्रथमकक्षामें प्रवेश प्राप्त करना हो तो अध्यापक पूछा करते हैं कि आनेवालेको अक्षरज्ञान और अंकज्ञान है या नहीं. और अगर इतना ज्ञान भी न हो तो अध्यापक उस विद्यार्थीको प्रथमकक्षाके स्थानपर शिशुकक्षामें जानेकी सलाह देते हैं. इसी प्रकार यदि पुष्टिमार्गमें प्रवेश प्राप्त करनेके लिये हमें शरणदीक्षा लेनी हो तो उसकेलिये हमारे भीतर कुछ योग्यता जरूरी है. हमारे भीतर यह विश्वास और समझ होनी चाहिये कि—

(१)श्रीकृष्ण सभी देवी-देवताओंसे बड़े हैं.

(२)श्रीकृष्णके अलावा हमारा उद्धार करनेवाला और कोई नहीं है.

(३)श्रीकृष्णके सिवा अन्य देवी-देवताओंका आश्रय वैष्णवकेलिये अक्षम्य अपराध है.

(४)श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर श्रीकृष्णका दास बनकर जीवन बितानेमें ही वैष्णव-जीवनकी सार्थकता है.

कमसे कम ये चार सिद्धांत हमारे हृदयमें दृढ़ हो जाते हों तो हमें समझना चाहिये कि हम शरणमन्त्रदीक्षा लेकर पुष्टिमार्गमें प्रवेश करने योग्य हैं. अन्य देवी-देवताओंका आश्रय, पूजा, मान्यता, व्रत या जप छोड़े बिना अगर शरणदीक्षा ली जाती है तो ऐसी दीक्षाका कोई अर्थ नहीं रह जाता है. अतः अन्याश्रयका त्याग पुष्टिमार्गमें अनिवार्य है.

इस तरह जब हम नाममन्त्रदीक्षा लेकर प्रभुके शरणमें चले जाते हैं, उसके बाद हमारा क्या कर्तव्य है यह श्रीमहाप्रभुजी हमें 'नवरत्न'ग्रन्थमें समझाते हैं.

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।

वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥

अर्थ: "हे श्रीकृष्ण! मेरा सहारा आप ही हो" इस प्रकारकी भावना मनमें रखते हुवे हमेशा "श्रीकृष्णः शरणं मम"मन्त्रका रटन करते रहना चाहिये.

किसी भी दीक्षामन्त्रकेलिये यह सर्वसाधारण नियम है कि जब भी कोई दीक्षित व्यक्ति दीक्षामन्त्रका भावार्थ भूल जाता है और दीक्षामन्त्रका जप करना भी छोड़ देता है तो उस दीक्षित व्यक्तिमेंसे वह दीक्षा निवृत्त (न होनेके बराबर) हो जाती है. पुस्तकमें लिखा हुआ ज्ञान बहुधा हमारे किसी काम नहीं आता; और वही बुद्धिगत हो तो काम आ जाता है. वैसे ही दीक्षामन्त्रके बारेमें भी समझना लेना चाहिये. गलेमें कंठीके पहन लेने मात्रसे कुछ नहीं होता. हमें दीक्षामन्त्र और उसके भावार्थ का निरंतर स्मरण करते रहना चाहिये. श्रीमहाप्रभुजी नवरत्न ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं:

निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैः जनैः।

अर्थ: अपने आत्मनिवेदनका स्मरण पुष्टिभक्तिमार्गीय भक्तोंके साथ निरन्तर करते रहना चाहिये.

दीक्षामन्त्र हमारेलिये पुष्टिपथके एक नक्शेके जैसा होता है. नक्शेके खो जानेपर अनजान राही जैसे अपने गन्तव्य-लक्ष्यसे भटक जाता है, वैसा ही हाल दीक्षामन्त्रका स्मरण न रहनेपर हमारा भी हो सकता है. हम अपने मार्ग और गन्तव्य-लक्ष्य दोनोंसे भटक सकते हैं.

इस प्रकार हमने शरणदीक्षाके स्वरूपको समझा. अब हमें समझना है कि शरणमार्ग क्या है और शरणमार्गपर चलनेवालोंके कर्तव्य क्या हैं.

शरणमार्ग

पुष्टिमार्गीय शरणमार्गका प्रवेशद्वार अष्टाक्षरमन्त्रकी दीक्षा है. शरणमार्ग पुष्टिभक्तिमार्गपर पहुंचनेका पहला कदम है. शरणमार्गमें आनेपर वैष्णवको चाहिये कि वह पुष्टिभक्तिमार्गके

वास्तविक सिद्धांतोंको समझे, श्रीकृष्णकी महत्ता तथा लीलाओं को पढ़-सुनकर हृदयमें प्रभुभक्ति दृढ़ हो पाये ऐसा प्रयास करे, दुनियामें कई समझने लायक बातें जैसे हमसे अधिक समझदार और अनुभवी लोगोंसे हम सीख लेते हैं, वैसे ही अपनेसे ज्यादा अनुभवी और ज्ञानी पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंसे या गुरुजनोंसे स्वमार्गका ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये. इस प्रकार शरणमार्गपर चलते हुवे भगवत्सेवा कर पानेकी अभिलाषा हृदयमें संजोये रखनी चाहिये. श्रीठाकुरजीको निजघरमें पधराकर अपने तन-मन-धनसे सेवा करने योग्य बन पायें ऐसी श्रीमहाप्रभुजी और श्रीठाकुरजी की कृपा प्राप्त कर पाना ही शरणमार्गकी सफलता है.

भगवत्सेवा कर पानेकी योग्यता प्राप्त करना ही शरणमार्गका प्रयोजन है. इस योग्यताको प्राप्त करनेके साधन हैं : वैष्णव तथा सद्गुरु का सत्संग; और प्रभुके माहात्म्य एवं स्वमार्ग के सिद्धांतोंका ज्ञान. इन साधनोंको करते हुवे जब हम अपने घरमें प्रभुको पधराकर तन-मन-धनसे उनकी सेवा करने लग जाते हैं तब यह शरणमार्ग सफल हुवा जाना जाता है.

वैष्णवचिह्न

भगवदाश्रय और अन्याश्रयत्याग जहां वैष्णव होनेके आन्तर लक्षण हैं, वहां तिलक और कंठी वैष्णव होनेके बाह्य लक्षण हैं. अलग-अलग विद्यालयोंके गणवेश (युनिफोर्म) अलग-अलग तरहके होते हैं. इसीलिये अगर कोई दो विद्यार्थी अलग-अलग गणवेश पहनकर जाते दिखलायी देते हों तो हम बता सकते हैं कि वे दो विद्यार्थी अलग-अलग विद्यालयोंमें पढ़ते होने चाहिये. इसी प्रकार तिलक-कंठी जैसे बाह्य चिह्नोंको धारण करनेसे हमारे पुष्टिसंप्रदायके अनुयायी होनेकी पहचान हो पाती है.

हमारे भारतवर्षमें कई संप्रदाय हैं और उन सभी संप्रदायोंके बाह्य चिह्न भी भिन्न-भिन्न हैं. इन चिह्नोंके भिन्न होनेके पीछे सभी संप्रदायोंकी कुछ न कुछ भावना

होती है. शिवजीको माननेवाले कपालपर भस्मका त्रिपुण्ड्र करते हैं, देवीको माननेवाले टीका लगाते हैं तो हनुमानजीको माननेवाले सिंदूर लगाते हैं. इसी प्रकार पुष्टिभक्तिमार्गियोंको कौनसे चिह्नोंको धारण करना चाहिये ? 'सर्वनिर्णयनिबन्ध'ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजी समझाते हैं :

शङ्खचक्रादिकं धार्यं मृदा पूजाङ्गमेव तत्।
तुलसीकाष्ठजा माला तिलकं लिङ्गमेव तत्॥

अर्थ : पुरुष वैष्णवोंको अपने दोनों बाजुओंपर गोपीचंदनसे शङ्ख-चक्र अङ्कित करने चाहिये. कपालपर प्रसादी कुंकुमसे तिलक करना और गलेमें तुलसीजीकी कंठी धारण करनी चाहिये.

इन बाह्य चिह्नोंसे हमारे वैष्णव होनेकी पहचान तो होती ही है साथ-साथ ये चिह्न हमारे सेवकधर्मका स्मरण भी हमें करवाते हैं. तिलक हमारे प्रभु श्रीकृष्णके चरणका प्रतीक है. तिलकको कपालपर धारणकर हम भगवत्-शरणागतिका स्मरण करते हैं. ये तो हुवे वैष्णवके बाह्य लक्षण परंतु वैष्णव होनेका सच्चा लक्षण तो हमारी पुष्टिभक्ति ही है. अब हमें पुष्टिभक्तिके स्वरूपको समझना है.

पुष्टिभक्ति

'पुष्टि'का अर्थ है भगवान्की कृपा. प्रभुकी कृपासे ही भक्तका ऐहिक (इहलोकसे संबंधी कार्य) पारलौकिक (परलोकसे संबंधी कार्य) सब कुछ होता है. अतः प्रभुमें अपनी भक्ति भी तभी हो सकती है जब हमारे ऊपर प्रभुकी कृपा हो. भक्तिके स्वरूपको समझाते हुवे श्रीमहाप्रभुजी 'शास्त्रार्थनिबन्ध' ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं :

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः तया मुक्तिर्न चान्यथा॥

अर्थ : प्रभुके माहात्म्यज्ञानके साथ सुदृढ़ और अन्य किसी भी विषयसे अधिक निःस्वार्थ स्नेह जब प्रभुमें होता

है तब उसे 'भक्ति' कहा जाता है.

ऐसी भक्ति होनेपर भक्त स्वसेव्यप्रभुके सेवा-स्मरणके बिना रह ही नहीं पाता. इस भक्तिके दो अंग हैं: माहात्म्यज्ञान और स्नेह. अब हम इन अंगोंको समझनेका प्रयास करेंगे.

'माहात्म्य'का अर्थ होता है: महिमा, बड़प्पन या सामर्थ्य. प्रभुके बड़प्पन, सामर्थ्य या महिमा का ज्ञान होना ही 'माहात्म्यज्ञान' कहलाता है. प्रभुके माहात्म्यका ज्ञान हमें भागवत, गीता, महाभारत, प्राचीन भक्तोंके चरित्र और अपनी वैष्णव वार्ताओंसे भी हो सकता है. जैसे—

अपने भक्तोंके उद्धारार्थ प्रभु बालकके रूपमें श्रीनन्दरायजीके घर प्रकट हुये. एक दिन खेल ही खेलमें श्रीकृष्णने मिट्टी खा ली और श्रीयशोदाजीको यह पता भी चल गया. उन्होंने श्रीकृष्णसे अपना मुंह खोलनेको कहा. जैसे ही श्रीकृष्णने मुंह खोला तो उसमें साराका सारा जगत् दिखायी देने लगा! ऐसे ही एक बार अर्जुन श्रीकृष्णसे प्रार्थना कर बैठा : "हे श्रीकृष्ण! आप मुझे अपना दिव्य स्वरूप दिखानेकी कृपा करो." तब श्रीकृष्णने अपना जो रूप दिखाया उसमें सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी, स्वर्ग, नर्क सब कुछ दिखायी देने लगे. भक्त प्रह्लादको उसके राक्षस पितासे बचानेकेलिये श्रीकृष्णने नृसिंहरूप धारण किया और खंभेमेंसे प्रकट होकर उसके पिता हिरण्यकशिपुका वध किया. भगवान्के ऐसे अद्भुत स्वरूपको जानना ही प्रभुका माहात्म्यज्ञान है.

जिन लोगोंको प्रभुका माहात्म्यज्ञान नहीं होता वे प्रभुकी भक्ति नहीं कर पाते. प्रभुके माहात्म्यज्ञानसे प्रभुके प्रति हमारा आदरभाव बढ़ता है. इसके परिणामस्वरूप हम प्रभुसे स्नेह करने लगते हैं. यदि यह स्नेह किसी कामनापूर्तिकी लालसासे होता है तो उसे स्नेह नहीं बल्कि स्वार्थ समझना चाहिये. स्नेह तो निःस्वार्थ रूपसे होता है तभी वह भक्तिका रूप ले पाता है. क्योंकि प्रभुके माहात्म्यज्ञानके सहित निःस्वार्थ सुदृढ़ और सर्वतोधिक स्नेहसे किये जाते सेवा और गुणगान भक्ति है.

कोई काम चाहे कितना ही सरल या श्रेष्ठ क्यों

न हो, उसे करनेकेलिये कुछ योग्यता तो हमारे भीतर होनी ही चाहिये. हम सब जीव प्रभुके ही अंश हैं और इस नाते स्वाभाविक रूपसे सभी जीव प्रभुके दास-सेवक हैं. फिर भी भगवत्सेवा करनेकेलिये हमें कुछ तो योग्यता प्राप्त करनी ही पड़ती है.

ब्रह्मसंबंध

प्रभुमें दृढ़ विश्वास, अन्याश्रयत्याग, तिलक-कंठी आदि बाह्य वैष्णव चिह्न, स्वमार्गीय सिद्धांतज्ञानकी कामना, हरि-गुरु-वैष्णवमें आदरभाव और भगवत्सेवा करनेकी इच्छा— कमसे कम इतने लक्षण तो ब्रह्मसंबंधदीक्षा लेनेवालेमें होने ही चाहियें. ये लक्षण दीक्षार्थीमें हैं या नहीं उसकी परीक्षा किये बिना गुरुको उसे ब्रह्मसंबंध नहीं देना चाहिये.

अब मान लिया जाय कि ऊपर गिनाये गये सभी लक्षण किसीमें हैं, पर यदि उसका संबंध ही प्रभुके साथ न हुवा हो तो क्या वह सेवा कर सकता है? जैसे पढ़ाईकेलिये किताब, पैन्सिल, कम्पासबोक्स सब कुछ जुटाकर रख लिया जाय पर अगर किसी विद्यालयमें प्रवेश ही न लिया हो तो क्या पढ़ाई हो सकती है? नहीं हो सकती. इसी तरह अगर प्रभुसेवा करनी हो तो हमें पहले प्रभुका सेवक बनना होगा. श्रीमहाप्रभुजी 'सिद्धांतरहस्य'ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं:

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति।
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः॥

भाव: जैसे एक सेवक अपने मालिकको अपना सब कुछ अर्पण कर निश्चिंत हो जाता है और अपने मालिकके आश्रयमें रहते हुवे अपना सब कार्य मालिककी आज्ञा लेकर करता है, उसी तरह अगर हम भी प्रभुके सेवक बनकर, अपना सब कुछ प्रभुको समर्पित करते हुवे, हमारे सभी व्यवहारोंको प्रभुकी आज्ञा लेकर और प्रभुको समर्पित करके चलाते हैं तो हमारी सभी वस्तु और व्यवहार भगवत्संबंधके

कारण पवित्र हो जाते हैं.

प्रभुको समर्पण हम ब्रह्मसंबंधदीक्षाके द्वारा करते हैं. इस दीक्षाको लेनेके बाद हम प्रभुके साथ स्वामी-सेवकके संबंधसे जुड़ जाते हैं. इस ब्रह्मसंबंध-दीक्षाको 'आत्मनिवेदन' भी कहा जाता है. 'निवेदन'का अर्थ होता है जताना, सूचित करना. आत्माके सहित अपना घर, परिवार, धन, शरीर सब कुछ प्रभुका ही है— ऐसे प्रभुको जताना 'आत्मनिवेदन' कहलाता है.

प्रभु हमारे अंशी हैं और हम प्रभुके अंश हैं— इस कारण परब्रह्म श्रीकृष्णके साथ हमारा स्वामि-सेवकताका संबंध ही ब्रह्मसंबंध है. श्रीमहाप्रभुजीके पुरुषवंशज किन्तु गुरुके लक्षणवाले गोस्वामी आचार्यसे ब्रह्मसंबंधकी विधिवत् दीक्षा लेनेसे हम पुष्टिमार्गकी प्रणालीके अनुसार अपने घरमें स्वसेव्यप्रभुकी सेवा करनेके अधिकारी बनते हैं. ब्रह्मसंबंध-दीक्षा लेनेसे प्रभु हमें निर्दोष मानकर हमारी सेवा और वस्तुओं को स्वीकार लेते हैं. श्रीमहाप्रभुजीने 'सिद्धान्तरहस्य'ग्रन्थमें आज्ञा की है :

ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिर्हि

भाव : जैसे कई बच्चे बहुत तूफानी होते हैं पर उनके तूफानी होनेसे मां-बाप उन्हें घरसे निकाल तो नहीं देते. क्योंकि मां-बाप बच्चोंको अपना समझते हैं. वैसे ही हम चाहे कितने ही दोषोंसे भरे हुवे क्यों न हों पर ब्रह्मसंबंधद्वारा हमारा आत्मनिवेदन हो जानेके बाद प्रभु हमें अपना समझते हैं. प्रभु इस अपनेपनके कारण ही हमारे दोषोंकी परवाह किये बिना हमारी सेवाको स्वीकारते हैं. पर हमें ध्यान रखना है कि प्रभुके द्वारा हमारे दोषोंकी परवाह न करना और हमारे निर्दोष हो जानेमें बहोत अन्तर है. इस ब्रह्मसंबंधमन्त्रको साक्षात् प्रभुने प्रकट होकर श्रीमहाप्रभुजीको दिया है.

गुरुके लक्षण

शिष्यको मन्त्रदीक्षा देकर मार्गके सिद्धान्तोंका ज्ञान

करानेवालेको 'गुरु' कहा जाता है. गुरुको 'मार्गदर्शक' भी कहा गया है, इसलिये गुरुका यह पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने शिष्योंको धर्मकी राहपर चलाये, उन्हें अधर्म करनेसे रोके, मार्गके सिद्धान्तोंकी समझ दे, प्रभुसेवा करनेकी प्रेरणा दे और अपने शिष्यमें प्रभुके प्रति भक्तिभाव बढ़े ऐसा अनवरत प्रयास करता रहे. इतना सब करते हुवे भी वह खुद अपने धर्मका आचरण करना कभी न भूले. ऐसे कर्तव्यनिष्ठ गुरुको खोज कर हमें शिष्य बनना चाहिये. ऐसे गुरुको, परंतु, कैसे पहचानना? सच्चे गुरुकी पहचान श्रीमहाप्रभुजीने 'सर्वनिर्णयनिबन्ध'ग्रन्थमें हमें इन शब्दोंमें बताई है :

कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दंभादिरहितं नरम्।
श्रीभागवतत्त्वज्ञं भजेद् जिज्ञासुरादरात्।।

अर्थ : सेवा करनेकी इच्छावाले जिज्ञासुको चाहिये कि वह नीचे दिखाये गये तीन लक्षण ब्रह्मसंबंध देनेवालेमें हैं या नहीं यह देखकर ही ब्रह्मसंबन्धकी दीक्षा ले :

(१) ब्रह्मसंबंधदीक्षा देने वाला गुरु —

श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंसे विपरीत आचरण करनेवाला न हो.

श्रीमहाप्रभुजीके बताये प्रकारसे अपने घरमें ही सेवा करता हो.

भगवत्सेवाको फलरूप समझकर करता हो.

जैसे वैष्णवलोग अपने घरोंमें अपने पैसोंसे परिवार-सहित खुद ही सेवा करते हैं वैसे खुद ही सेवा करता हो.

भगवत्सेवाकेलिये किसीसे पैसा, भेट-सामग्री मांगता न हो और किसीके दे जानेपर उसे बटोरता भी न हो.

(२) कोई प्रभुसेवा करता हो पर यदि पाखंड या लोभ से करता हो तो ऐसा व्यक्ति गुरु बनने योग्य नहीं हो सकता. अतः गुरुको चाहिये कि वह लोगोंको दिखानेकेलिये,

वाहवाही या पैसा बटोरनेकेलिये सेवा न करे.

(३) भागवत, क्योंकि, भक्तिमार्गका आधार है इसलिये ब्रह्मसंबंध देनेवाला कमसे कम भागवतके सारको जाननेवाला तो होना ही चाहिये.

वैसे तो हम सभीके गुरु श्रीमहाप्रभुजी ही हैं फिर भी श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा होनेसे ये तीन लक्षण जिस वल्लभवंशज गोस्वामी आचार्यमें हों उससे ही ब्रह्मसंबंध दीक्षा लेनी चाहिये. अयोग्य व्यक्तिसे दीक्षा लेनेपर, दीक्षा लेने और देने वाले दोनोंकी अधोगति होती है. दीक्षा लेनेवाला अपने लक्ष्य तक पहुंच नहीं पाता और दीक्षा देनेवाला योग्यताके अभावमें शिष्यको सही राह दिखानेके बजाय भटकता हुआ छोड़ सकता है और अंतमें खुद भी अपराधी बन जाता है.

इस प्रकार हमने समझा कि श्रीमहाप्रभुजीके बताये हुवे लक्षणोंवाले योग्य गुरुके द्वारा हमें आत्मनिवेदन करना चाहिये. आत्मनिवेदनमन्त्रमें हम प्रभुको निवेदन करते हैं :

"हे कृष्ण ! में और मेरा सब-कुछ आपका ही है". पर क्या इतना बोल लेनेसे हमारा कर्तव्य पूरा हो जाता है? कभी नहीं. आत्मनिवेदनके बाद तो हमारा कर्तव्य शुरु होता है. ब्रह्मसंबंध हो जानेपर हमारा यह कर्तव्य बनता है कि जो सर्वसमर्पणकी प्रतिज्ञा हमने प्रभुके सन्मुख हाथोंमें तुलसीपत्र लेकर की है उसे पूर्ण करें. यह तभी सम्भव हो पायेगा जब हम प्रभुको अपने घरमे पधरा कर उन्हें हमारा सब कुछ साक्षात् समर्पित करते हों.

सर्वसमर्पण

श्रीमहाप्रभुजी 'सिद्धान्तरहस्य'ग्रन्थमें ब्रह्मसंबंधके बाद हमारा क्या कर्तव्य है यह समझाते हुवे आज्ञा करते हैं :

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।

अर्थ: जिन्होंने प्रभुको आत्मनिवेदन किया है ऐसे पुष्टिमार्गी जीवोंको चाहिये कि वे अपने सभी काम प्रभुको

निवेदन करके (आज्ञा लेकर) चलायें और जो भी अपनी वस्तु अपने उपयोगमें लाना चाहते हों उसे पहले प्रभुको समर्पित करें.

श्रीमहाप्रभुजीने यहां पर 'निवेदन' और 'समर्पण' का भेद समझाया है. 'निवेदन'का अर्थ है: हमारा सब कुछ प्रभुका है ऐसा प्रभुको जताना. निवेदनके बाद हमारी हर वस्तुको भगवत्सेवामें लगाना इसे 'समर्पण' कहते हैं. समर्पण हमें किस प्रकारसे करना चाहिये? श्रीमहाप्रभुजी 'सिद्धान्तरहस्य'ग्रंथमें आज्ञा करते हैं :

तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्।

अर्थ: किसी भी कार्यको करनेसे पहले या किसी भी वस्तुका उपयोग करनेसे पहले उसे प्रभुको समर्पित कर देना चाहिये.

यही कारण है कि हमारे यहां प्रभुकी आज्ञा लेकर ही कोई कार्य आरंभ किया जाता है. अतएव उसी वस्तुका उपयोग करना चाहिये जो प्रभुको समर्पित हो. दासका तो यही धर्म होता है.

कभी हमारे मनमें ऐसी शंका होती है कि हम प्रभुको समर्पण तो करते हैं पर क्या प्रभु हमारी समर्पित वस्तुको स्वीकारते होंगे? इस शंकाका समाधान भगवान् 'गीता'में इस वचनद्वारा करते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः॥

अर्थ: भगवान् कहते हैं— फल फूल जल जो कुछ भी, भक्तिभावसे मुझे अर्पित किया जाता हो, मैं उसका उपभोग जरूर करता हुं.

हमने तो आत्मनिवेदन किया है. हम श्रीमहाप्रभुजीकी रीति (कानि) से प्रभुको समर्पण करते हैं तब हमारा समर्पण प्रभु क्यों नहीं स्वीकारेंगे? पर याद रहे कि अगर हम श्रीमहाप्रभुजीके द्वारा बताये गये स्वसर्वस्वसमर्पणके प्रकारको छोड़कर श्रीठाकुरजीकेलिये किसी औरसे मांग कर प्रभुको

कुछ अर्पित करते हैं; या ऐसी चीज कि जिस पर हमारी मालिकी ही न हो, उसे भी प्रभुको अर्पित करते हैं तब तो प्रभु उसे स्वीकार ही नहीं करते; अप्रसन्न और हो जाते हैं.

परम भगवदीय किशोरीबाईकी गरीबी देखकर किसी वैष्णवने किशोरीबाईको श्रीठाकुरजीको भोग धरनेकेलिये सुंदर सामग्री पधरायी. किशोरीबाईने प्रभुके सुखका विचार करके सामग्री सिद्ध की और श्रीठाकुरजीको भोग धर दी. पर यह क्या! श्रीठाकुरजीने उस भोगकी ओर देखा तक नहीं. जब किशोरीबाईने इसका कारण पूछा तब श्रीठाकुरजीने कहा: "तूने मेरेलिये सामग्री क्यों ली? मैं किसी दूसरेकी सामग्री कैसे अरोगता?" श्रीठाकुरजीकी बात सुनकर किशोरीबाईको अपनी गलतीका अहसास हुवा.

इस प्रसंगसे श्रीठाकुरजीने हमें यह समझाया कि हमें श्रीठाकुरजीकेलिये मांगकर या श्रीठाकुरजीकेलिये किसी औरके द्वारा दी हुई वस्तु हमारे श्रीठाकुरजीको भोग नहीं धरनी चाहिये. श्रीठाकुरजी ऐसी पराई वस्तुको स्वीकारते नहीं हैं. और फिर दूसरे किसीकी वस्तु या पैसे को हमारे श्रीठाकुरजीके उपयोगमें लानेसे हमें या देनेवाले को क्या लाभ हो सकता है? क्योंकि 'सिद्धान्तमुक्तावली' ग्रन्थमें सेवाकी व्याख्या करते हुवे श्रीगुसांईजी तो इस तरह की गई सेवाको सेवा ही नहीं मानते. परमभगवदीय श्रीपद्मनाभदासजीकी वार्तासे भी हमें यही सिद्धान्त समझमें आता है.

इन सब बातोंका सार यही निकलता है कि समर्पण तो केवल अपनी मालिकीकी वस्तुका ही हो सकता है, पराई वस्तुका समर्पण हो ही नहीं सकता. अर्थात् पराई वस्तु अगर भूलसे भी हमारे प्रभुके सामने आ गयी, जैसा कि किशोरीबाईके प्रसंगमें हुवा, तो वह वस्तु हमारेलिये तो असमर्पित जैसी ही रहती है. क्योंकि प्रभु उसे स्वीकारते ही नहीं है. याद रखना चाहिये कि असमर्पित वस्तुका उपभोग हमारेलिये सर्वथा वर्जित है.

असमर्पितत्याग

जब और नदी या नाले या बरसात के पानी गंगाजीमें मिल जाते हैं तो वे गंगाजल ही बन जाते हैं. वैसे ही हमारी सभी वस्तु प्रभुको समर्पित होते ही निर्दोष-भगवदीय बन जाती हैं. ऐसी निर्दोष वस्तुका उपभोग यदि हम करते हैं तो हमारे भीतर दोषका प्रवेश नहीं हो पाता परंतु ऐसी वस्तु जो प्रभुको समर्पित न हुई हो या जिसका स्वीकार प्रभुने न किया हो, जैसा कि किशोरीबाईकी वार्तामें हमने देख ही लिया, ऐसी वस्तुको अगर हम अपने उपयोगमें लाते हैं तो हम दोषी बनते हैं. ऐसी असमर्पितवस्तुके उपभोगसे हम प्रभुसे बहिर्मुख हो जाते हैं. किसी वस्तु या व्यक्ति का प्रभुके साथ सम्बन्ध न होना एक वैष्णवकेलिये तो सबसे बड़ा दोष है. इसी कारण श्रीमहाप्रभुजी 'सिद्धान्तरहस्य' ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं:

असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनमाचरेत्।

अर्थ: गन्दे पानीको छुनेसे जैसे हमारा शरीर गन्दा हो जाता है, वैसे ही प्रभु सम्बन्धसे रहित असमर्पित वस्तुके उपभोगसे हमें दोष लग जाता है. हमारा मन प्रभुसे विमुख हो जाता है. इसलिये असमर्पितवस्तुका त्याग करना चाहिये.

असमर्पित वस्तुका त्याग तभी सम्भव है जब हम प्रभुको अपने घरमें पधराकर सर्वसमर्पणपूर्वक उनकी सेवा करें. यहां अब हमें कृष्णसेवाका स्वरूप समझ लेना चाहिये.

कृष्णसेवा

'सिद्धान्तमुक्तावली' ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं:

चेतस्तत्प्रवणं सेवा।

अर्थ: मनका प्रभुमें लग जाना ही सेवा है.

यहांपर एक प्रश्न उठता है कि मनको प्रभुमें किस तरहसे लगाया जाय? क्या जप तप ध्यान या योग से लगाया जाय? श्रीमहाप्रभुजी इस प्रश्नका उत्तर देते हैं:

तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।

अर्थ: प्रभुको अपने घरमें पधराकर घर-परिवार-धन-सम्पत्ति सबको प्रभुसेवामें लगाते हुवे यदि हम खुद ही प्रभुकी सेवा करते हैं तो हमारा मन अपने आप ही प्रभुमें लग जायेगा.

एक वैष्णवकेलिये तो भगवत्सेवा ही सब कुछ है: जप, तप, ध्यान या तीर्थ रूप भी. यहांपर एक प्रश्न उठता है कि इस प्रकार सेवा करनेसे हमारा मन भगवत्प्रवण कैसे हो जायेगा?

मनका यह स्वभाव है कि जो वस्तु उसके सम्पर्कमें आती है, उसीकी ओर मन आकर्षित हो जाता है. जो वस्तु जितनी ज्यादा देर तक और जितनी नजदीकीसे सम्पर्कमें आती है, उसकी ओर मन ज्यादा आकर्षित हो जाता है. हमारी सबसे नजदीक वस्तु है हमारा शरीर और उसके बाद हमारा परिवार, घर, सम्पत्ति आदि. ये सभी वस्तुएं किसी न किसी तरह हमारे मनके आस-पास रहती हैं. इन सबके अलावा पूर्वजन्मोंमें हमारे द्वारा किये हुवे अच्छे-बुरे कर्मोंके संस्कार (वासना) भी हमारे मनके साथ जुड़े ही रहते हैं. इस कारण हमारा मन निरन्तर इन सभी चीजोंमें लगा रहता है. ऐसी स्थितिमें यदि हम केवल हमारे देहसे प्रभुकी सेवा करते हैं तो, हमारा आधा मन तो सेवामें रहेगा और आधा घर-परिवार-सम्पत्तिमें. हम अपने घर-परिवार-सम्पत्तिको भी प्रभुसेवामें लगा देते हैं तो, हमारा मन इन सबकी ओर भटके बिना सीधा प्रभुमें ही लग जायेगा. श्रीमहाप्रभुजी जो आज्ञा करते हैं कि अपना सर्वसमर्पण करते हुवे सेवा अपने हाथसे करनी चाहिये उसका रहस्य यही है. क्योंकि यदि अपने घरमें हम नौकर रखकर; या मंदिरोंमें भगवत्सेवाका व्यापार करनेवाले मुखिया-महाराजोंके द्वारा सेवा करवाते हैं तो, उस स्थितिमें हमारे देह एवं परिवार का विनियोग भगवत्सेवामें हो नहीं पायेगा. इसी तरह मंदिरोंमें करने जानेपर हमारी घर-गृहस्थी तो प्रभुको

असमर्पित ही रहती है. ऐसी स्थितिमें शरीर संबंधी कार्य (विषयासक्ति) में और घर-गृहस्थीमें ही हमारा मन लगा रहेगा; प्रभुमें कदापि लग नहीं पायेगा. किसी औरके द्वारा सेवा करवानेपर तो हमारे मनमें दैन्य (दास) भाव बढ़नेके बजाय अहंकार ही बढ़ता है. यदि हम दूसरोंके पाससे पैसा या सामग्री-वस्तु लेकर हमारे श्रीठाकुरजीकी सेवा करते हैं, जैसा कि मंदिर-हवेलियोंमें होता है, तब हमारी धन-सम्पत्ति तो प्रभुको समर्पित होती नहीं, इस कारण वह असमर्पित ही रह जाती है. इतना ही नहीं, दूसरोंसे श्रीठाकुरजीके लिये पैसा लेकर सेवा करनेपर, केवल आनेवाले पैसोंको बटोरनेमें ही हमारा मन लगा रहता है. प्रभुके नामपर आये हुवे पैसोंमें लालच और असमर्पितका भक्षण तो अपने मार्गमें सर्वनाशका ही कारण है! इसी कारण श्रीगुसांईजी 'सिद्धान्तमुक्तावली' ग्रंथमें आज्ञा करते हैं— पैसा देकर किसी औरके द्वारा करवायी गयी सेवा; और दूसरोंसे पैसे आदि लेकर की गयी सेवा तो सेवा ही नहीं है. क्योंकि भगवान्ने भक्तिके जितने भी प्रकार बताये हैं उनमें ऐसा कोई भी प्रकार कहीं भी बताया नहीं है. भगवान्के नामपर पैसा लेकर अपना गुजारा करनेवालेको तो शास्त्रोंमें जघन्यकोटिका महापतित 'देवलक' कहा गया है.

श्रीमहाप्रभुजीके मार्गकी सबसे महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य आवश्यकता है: स्वसर्वस्वसमर्पण. यह सर्वसमर्पणका सिद्धांत भी चूर-चूर ही हो जाता है, जब हम दूसरोंको पैसा-सामग्रीकी भेंट देकर सेवा करवाते हैं; या किससे पैसा-सामग्री लेकर खुद सेवा करते हैं. सर्वसमर्पणके सिद्धान्तके टूट जानेपर तो पुष्टिभक्तिमार्ग ही नहीं रह जाता. इन सब कारणोंसे श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि सेवा (चित्तकी भगवत्प्रवणता) तो एक मात्र 'तनुवित्तजा' (अपने घरमें, अपने ही तनसे, अपने ही धनसे; और अपने ही परिवारजनोंके सहयोगसे प्रभुकी सेवा) करनेपर ही होती है. ऐसी **तनुवित्तजा**सेवा खुदके घरके अलावा और कहीं (हवेली-मंदिरोंमें) संभव ही नहीं है.

हमें सेवा कहां करनी चाहिये? इस प्रश्नका उत्तर श्रीमहाप्रभुजीने 'भक्तिवर्धिनी'ग्रंथमें दिया है:

गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः।

अपने वर्णधर्म और आश्रमधर्म*का पालन करते हुवे खुदके **घरमें** ही सेवा करनी चाहिये. हमारे घरमें बिराजते श्रीठाकुरजी साक्षात् परब्रह्म पूर्ण-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण स्वयं हैं. वे ही हमारेलिये सब कुछ हैं— ऐसा भाव मनमें रखते हुवे सेवा करनी चाहिये. यही आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी 'चतुःश्लोकी'ग्रंथमें करते हैं:

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।

अर्थ: व्रजके राजा श्रीकृष्णकी सेवा हमें सर्वभावसे सदा ही करनी चाहिये.

हमारे मनका स्वभाव अति चंचल होनेसे प्रभुका सेवा-स्मरण अगर थोड़ी देर भी छूट जाता है तो हमारा मन प्रभुसे हटकर कहीं ओर भटक जायेगा. अतः श्रीमहाप्रभुजी 'चतुःश्लोकी'ग्रंथमें आज्ञा करते हैं :

अतः सर्वात्मना श्रश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः॥

अर्थ : हमारा मन कभी प्रभुसे अलग न हो इसलिये प्रभुके सेवा-स्मरण हमें कभी नहीं छोड़ने चाहिये. मन-वचन-कर्मसे हमेशा प्रभुके सेवा-स्मरण करते रहना चाहिये.

ब्रह्मसंबंध लेते समय हम अपने परिवारको भी प्रभुको समर्पित करते हैं. इसलिये जैसे हम अपने घर सम्पत्ति आदिका विनियोग (उपयोग) भगवत्सेवामें करते हैं, वैसे ही अपने परिवारका विनियोग भी हमें भगवत्सेवामें करना चाहिये. अन्यथा हमारा समर्पण अधूरा ही रह जाता है.

कभी ऐसा भी होता है कि परिवारके सभी लोगोंकी भगवत्सेवामें रुचि ही न हो तब क्या करना? क्या उन्हें जबरन सेवामें सम्मिलित करना? इस शंकाका समाधान

* देखिये 'सामान्यधर्म' पृष्ठ–४१

'सर्वनिर्णयनिबन्ध'ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजी इस प्रकार करते हैं:

भार्यादिरनुकूलश्चेत् कारयेत् भगवत्क्रियाम्।
उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत्॥

अर्थ: परिवारके जो सदस्य सेवामें उत्साहपूर्वक सम्मिलित होते हों, उनपर प्रभुकी कृपा है ऐसा समझकर, उन्हें सेवामें सहयोगी बनाना चाहिये. जो लोग, परंतु, सेवामें रुचि न रखते हों तो भगवदिच्छा वैसी ही होगी ऐसा समझकर, उन्हें सेवामें सम्मिलित करनेका दुराग्रह नहीं रखना चाहिये. जितनी भी बन पड़े, खुद ही सेवा करनी चाहिये. सेवामें, परन्तु, प्रतिबन्ध करनेवालोंके साथ कभी रहना नहीं चाहिये.

इस प्रकार हमने समझा कि 'सेवा' किसे कहते हैं, सेवा कैसे करनी, सेवा कहां करनी, सेवा कितने समय करनी, किसे करनी और सेवामें किन लोगोंको सहयोगी बनाना.

अब समस्या यह खड़ी होती है कि सेवा करते हुवे, हो सकता है कि कोई बात हमारी समझमें न आये या मार्गके सिद्धांतोंके बारेमें ही कभी कोई संशय हो जाय, तब हमें किस व्यक्तिसे सेवाके बारेमें जानकारी प्राप्त करनी चाहिये? और शायद किससे पूछ भी लिया जाय तो वह हमें सही राह ही दिखा रहा है या गलत— यह हम कैसे जान पायेंगें?

सिद्धांतसमझ

विद्यार्थीको पढ़ते हुवे कभी कोई कठिनायी सामने आ जाय तो वह अपने अध्यापकसे पूछता है. अध्यापक यदि न हो तब वह खुदसे ज्यादा पढ़े हुवे अनुभवी विद्यार्थीसे पूछता है. कभी ऐसा भी हो सकता है कि उसकी समस्याका समाधान उसे शिक्षक या अनुभवी मेधावी सहपाठी विद्यार्थीसे भी न मिले. तब तो उसे खुदकी पढ़ाईकी किताबोंमेंसे अपने प्रश्नोंका हल खोजनेका प्रयास करना पड़ता है. इसी प्रकार जब हमें मार्गके सिद्धांतोंके

विषयमें कोई प्रश्न हो तब हमें योग्य गुरुसे पूछना चाहिये. 'नवरत्न'ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं:

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा

अर्थ: सेवा कैसे करनी इसका ज्ञान शुरुमें हमें नहीं होता है. इसलिये शुरुमें गुरुकी आज्ञा अनुसार सेवा करनी चाहिये.

यदि गुरु न हो तो जो वैष्णव स्वमार्गीय सिद्धांत-परंपराके जानकार हों और जिनका आचरण मार्गसे विपरीत न हो उनसे सिद्धांतज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये. मार्गके सिद्धांतोंसे विपरीत आचरण करनेवालोंसे कभी कुछ भी पूछना नहीं चाहिये. हो सकता है वे स्वार्थवश हमें मार्गभ्रष्ट कर दें! अतः जब हमें मार्ग दिखानेवाला कोई योग्य व्यक्ति न मिले तब हमें खुद ही— श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीगुसांईजी आदि मार्गप्रवर्तक आचार्य एवं श्रीगोकुलनाथजी, श्रीहरिरायजी, श्रीपुरुषोत्तमजी आदि परवर्ती आचार्योंके ग्रन्थों एवं व्याख्याओं को समझकर— अपनी समस्याका हल खोज लेना चाहिये.

वैसे भी श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि शास्त्रको समझकर भगवत्सेवा करनी चाहिये. अतः हमारे पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका अभ्यास अनिवार्यरूपसे करना चाहिये. क्योंकि यदि हमने मूल ग्रन्थोंका थोड़ा अभ्यास भी नहीं किया होता है तो फिर कोई भी व्यक्ति हमें स्वमार्गसे विरुद्ध दिशामें ले जा सकता है! अगर हमने सिद्धांतग्रन्थोंका थोड़ासा भी अध्ययन किया हो तो किसकी सलाह या आज्ञा श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धांतोंसे विरुद्ध है और किसकी अनुकूल— कमसे कम इतना तो हम जान ही लेंगें. इसीलिये श्रीहरिरायजी 'शिक्षापत्र'में दुःसंग किसे कहते हैं यह समझाते हुवे आज्ञा करते हैं:

यो वदन्त्यन्यथावाक्यम् आचार्यवचनाद् जनः।
संसृतिप्रेरको वापि तत्संगो दुष्टसंगमः॥

अर्थ: यदि कोई श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञासे विरुद्ध बात

कहता हो; या हम प्रभुसे बहिर्मुख हो जायें ऐसा कुछ करनेकी किसी तरहकी सलाह देता हो तो, उसके संगको दुष्टसंग समझना चाहिये. ऐसी आज्ञा यदि स्वयं गुरुआज्ञा भी हो तो ऐसे गुरुके संगको भी दुःसंग समझकर छोड़ देना चाहिये.

दान-देवद्रव्य

ब्रह्मसंबंधमन्त्रके द्वारा प्रभुको अपनी सभी वस्तुका समर्पण करके अपने मनमें हम ऐसी भावना रखते हैं कि प्रभु हमारे स्वामी हैं और हम प्रभुके दास. सेवकका यह कर्तव्य है कि मालिक उसे जो वस्तु कृपा करके दे उसीसे वह अपना गुजारा चलाये. प्रभुके उपभोगमें आ चुकी वस्तुको 'प्रसाद' या 'समर्पित' कहते हैं. हम प्रभुके दास हैं. इसलिये हमें समर्पित-प्रसादसे ही अपने सारे व्यवहार चलाने चाहिये. यह तो हुयी समर्पणकी बात. कई बार ऐसा भी होता है कि किसीको हम कुछ देते हैं तब हमारे मनमें ऐसा भाव रहता है कि "अब यह चीज़ मेरी नहीं है". ऐसे मनोभावसे जब हम किसीको कोई चीज़ देते हैं, तब वह 'समर्पण' नहीं कहलाता. वह 'दान' कहलाता है. दान करते समय दानमें दी जानेवाली वस्तुपरसे हम अपना मालिकाना हक हटाकर लेनेवालेको उस वस्तुका मालिक बनाते हैं. इसी प्रकार जब प्रभुको भी कोई वस्तु दानकी भावनासे दी जाती है, तब उस वस्तुका उपभोग हम नहीं कर सकते. चाहे फिर वह प्रसाद ही क्यों न हो. इसका कारण यह है कि प्रभुको दानमें दी जानेवाली वस्तुके मालिक स्वयं प्रभु ही होते हैं. इसलिये वह वस्तु **देवद्रव्य** बन जाती है.

आजकल जिन हवेली-मंदिरोंमें वैष्णवोंसे श्रीठाकुरजीकेलिये भेंट-सामग्री मांगकर या स्वीकारकर जो भोग-सामग्री श्रीठाकुरजीको धरी जाती है, वह देवद्रव्य ही होती है. क्योंकि वह श्रीठाकुरजीकेलिये ही ली और दी जाती है. इसीलिये उसके मालिक भी श्रीठाकुरजी ही होते हैं, गोस्वामी मुखियाजी

ट्रस्टी या पुष्टिमार्गीय वैष्णव नहीं. अतः ऐसे देवद्रव्यके प्रसादको लेनेके अधिकारी न तो गोस्वामी आचार्य होते हैं न ही भेंट-सामग्री देनेवाले वैष्णव. यदि कोई भी ऐसे देवद्रव्यका प्रसाद खाता है तो वह पापका भागी बनता है. इसीलिये श्रीगुसांईजी 'नवरत्न'ग्रन्थकी व्याख्यामें लिखते हैं:

दाने हि न स्वविनियोगः

अर्थ : प्रभुको दानमें दी हुयी वस्तुका उपभोग हमें कभी नहीं करना चाहिये.

श्रीमहाप्रभुजी भी आज्ञा करते हैं:

''जो श्रीठाकुरजीका द्रव्य(देवद्रव्य) खायेगा वह मेरा(वैष्णव) नहीं कहलायेगा. और मेरा अनुयायी भगवदीय होगा तो वह देवद्रव्य कभी नहीं खायेगा. जो खायेगा वह महापतित हो जायेगा.''

इसके अतिरिक्त श्रीमहाप्रभुजीके सेवक संतदास और श्रीगुसांईजीके सेवक एक बीनकारकी वार्तासे भी दान और देवद्रव्य की स्पष्टता हो जाती है. इस तरह हमने समझा कि प्रभुको दानकी भावनासे दी गयी वस्तु **देवद्रव्य** बन जानेसे ऐसी वस्तुका उपभोग हमें कभी नहीं करना चाहिये.

अपना तो समर्पणका मार्ग है. प्रभुको समर्पण करनेसे किसी वस्तुपरसे हमारा मालिकाना हक्क हटता नहीं है. समर्पण द्वारा केवल हमारे मालिक होनेके अभिमान (मेरेपन) को प्रभुसमर्पित किया जाता है. यही कारण है कि समर्पित वस्तुके उपभोगसे हमें दोष नहीं लगता. यहां, परंतु, हमें ध्यान रखना है कि समर्पण तो मात्र अपनी मालिकीकी वस्तुका ही हो सकता है. दूसरा कोई अगर खुदकी वस्तु हमारे श्रीठाकुरजीकेलिये दे भी जाय तो वह देवद्रव्य बन जाती है. किशोरीबाईकी वार्तासे हमने समझा कि हमारे श्रीठाकुरजी दूसरेकी सत्ता (मालिकी) की वस्तु अरोगते ही नहीं है.*

*विशेष जिज्ञासुओंको दो सौ बावन वैष्णवोंकी वार्तांके अन्तर्गत आती श्रीगुसांईजीके सेवक 'दोऊ वैष्णव जिनमें कीड़ा देखे'की वार्तांका अवलोकन करना चाहिये.

देवद्रव्यको समझनेके बाद अब 'देवलक' किसे कहते हैं यह समझनेका हम प्रयास करेंगे.

देवलक

हमारा पुष्टिभक्तिमार्ग निष्काम कृष्णभक्तिका मार्ग है. यदि कोई कामना है तो बस जन्म-जन्म प्रभुकी सेवाकरते रहनेकी. इसे ही 'निर्गुणभक्ति' या 'पुष्टिभक्ति' कहते हैं. श्रीभागवतकी सुबोधिनी व्याख्यामें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं:

''मनमें लोभ-ईर्ष्या-अभिमान रखकर, पाप धोनेकेलिये, कर्तव्य समझकर या कर्मफल प्रभुको अर्पित करनेकी भावनासे जो भक्ति की जाती है, वह तो भक्ति ही नहीं है. ऐसी स्वार्थभावनाओंको मनमें रखकर की जानेवाली भक्ति तो भक्तिका निरा नाटक है. ऐसे हीन भावोंको मनमें रखकर भक्तिका नाटक करनेवालेको भक्तिके स्थानपर दोष ही लगता है''.

इसीलिये शास्त्रमें कहा गया है:

देवार्चनपरो यस्तु वित्तार्थी वत्सरत्रयम्।
स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः।।

अर्थ: जो ब्राह्मण खुदका गुजारा चलानेकेलिये भगवान्की सेवा-पूजा करता हो उसे याग-होम-श्राद्ध आदि कर्ममें वर्जित 'देवलक' कहा जाता है.

ऐसे देवलक पुजारी या सेवाकर्ताको दान-दक्षिणा या भोजन देनेवाला पापका भागी बनता है. ऐसे देवलकका स्पर्श भी यदि हो जाये तो स्नान करना चाहिये— ऐसे शास्त्रमें स्पष्ट कहा है. श्रीपुरुषोत्तमजी भी 'सिद्धांतमुक्तावली' ग्रन्थकी व्याख्यामें लिखते हैं:

लाभपूजार्थयत्नस्य उपधर्मत्व-देवलकत्वादि-सम्पादकत्वात्

अर्थ : पैसा या प्रतिष्ठा मिले ऐसी स्वार्थमयी भावनासे जो श्रीठाकुरजीकी सेवा करता है वह 'पाखंडी' और 'अपवित्र देवलक' कहलाता है.

इस वचनसे सिद्ध होता है कि जो कोई भी व्यक्ति अपने श्रीठाकुरजीकेलिये दूसरोंसे पैसा-सामग्री मांगता है; या किसीके देनेपर उसे स्वीकारता है तो उसे अपवित्र देवलक समझना चाहिये. अतः पैसा इकट्ठा करनेकेलिये या मान-सन्मानकी अपेक्षासे प्रभुकी सेवा करना श्रीमहाप्रभुजीके अनुसार पाप है. प्रभु ही हमारे धन हैं — ऐसी उच्च भावना रखते हुवे निष्काम भावसे सेवा करनेपर भक्ति होती है.

श्रवण-कीर्तन-सत्संग

प्रभुकी सेवा करनेके बाद हम बाहरके कार्योंमें लग जाते हैं. ऐसी स्थितिमें हमारा मन प्रभुसे दूर हट जाता है. ऐसा न हो और प्रभुका स्मरण हमेशा रहे इसलिये भगवन्नाम-स्मरण-कीर्तन बहोत जरुरी हैं. अतः सेवाके बाद (अनवसर) के समयमें प्रभुकी दिव्य लीलाओंका पठन कीर्तन और चिंतन करते रहना चाहिये. शरीरमें घुसे रोगोंको दूर करनेकेलिये जैसे हम दवाई लेते हैं, वैसे ही हमारे मनमें घुसे हुवे भक्तिविरोधी भावोंको दूर करनेकेलिये श्रीमहाप्रभुजी हमें श्रीभागवतका अभ्यास करनेकी आज्ञा देते हैं. अपने गुरुसे या भागवतके अभ्यासी और निर्लोभी वैष्णवके पास श्रीभागवतका अभ्यास करना चाहिये. पैसा कमानेकेलिये जो भागवतसप्ताह या प्रभुके कीर्तन-गुणगान करते हों उनके पास कथा-कीर्तन-श्रवणार्थ कभी नहीं जाना चाहिये. पैसा कमानेकेलिये जो लोग प्रभुके कीर्तन-गुणगान करते हैं उनकी निन्दा करते हुवे श्रीमहाप्रभुजीने 'जलभेद' ग्रन्थमें कहा है:

जलार्थमेव गर्तास्तु नीचाः गानोपजीविनः।

अर्थ: जो लोग पैसा कमानेकेलिये प्रभुके गुणगान-कीर्तन करते हैं उनके मनोभावोंको गड्ढेमें भरे हुवे गंदे पानीके जैसा समझना चाहिये.

गंदे पानीसे जैसे हम दूर रहते हैं, वैसे ही ऐसे निम्नकक्षाके लोगोंसे हमें दूर रहना चाहिये. ऐसे लोगोंके संगको दुःसंग समझकर उनका संग कभी नहीं करना चाहिये.

जो भगवदीय वैष्णव स्वार्थरहित होते हैं उनके पास जा कर ब्रह्मसंबंध और भगवल्लीलाका स्मरण श्रवण और कीर्तन करना चाहिये. यही बात श्रीमहाप्रभुजी श्रीभागवतकेलिये भी कहते हैं:

पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम्।
वृत्त्यर्थं नैव युंजीत प्राणैः कंठगतैरपि।।

अर्थ: किसी भी प्रकारकी लौकिक या पारलौकिक कामना रखे बिना श्रीभागवतका अभ्यास खुद ही करना चाहिये. प्राण भले ही निकल जाय परन्तु श्रीभागवतको पैसे कमानेका साधन कभी नहीं बनाना चाहिये.

क्योंकि हमारेलिये तो श्रीभागवत साक्षात् श्रीनाथजी (श्रीकृष्ण) का ही स्वरूप है. अतएव श्रीमहाप्रभुजी तो श्रीभागवतको वेद या और किसी भी पुराणसे ज्यादा महत्त्व देते हैं. क्योंकि प्रभुके पुरुषोत्तमस्वरूप और ब्रह्मवाद का जितना स्पष्ट और सुंदर निरूपण श्रीभागवतमें किया गया है, उतना तो वेद उपनिषद् या अन्य पुराणों में भी नहीं मिलता. यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि 'ब्रह्मवाद' किसे कहते हैं?

ब्रह्मवाद

चतुःश्लोकी भागवतमें भगवान् ब्रह्मवादका स्वरूप इस प्रकार समझाते हैं:

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोस्म्यहम्।।

अर्थ: इस जगत्की सृष्टिके पहले मैं (श्रीकृष्ण) ही था. मेरे सिवा और कोई नहीं था. वर्तमानमें जो जड़-चेतन पदार्थ दिखलायी दे रहे हैं वह भी मैं ही बना हुं. और प्रलयके बाद जो कुछ भी बच जायेगा वह भी मेरे सिवा और कुछ नहीं होगा.

सरल शब्दोंमें यदि कहा जाये तो भगवान् श्रीकृष्णने अपनी क्रीड़ाकेलिये यह जगत् बनाया है. इस जगत्में जो

कुछ भी है वह भगवान् खुद ही बने हैं. श्रीकृष्णसे बड़ा इस जगत्में और कोई नहीं है. यही ब्रह्मवाद है.

अंतमें हम यह समझेंगे की श्रीमहाप्रभुजी द्वारा स्थापित ब्रह्मवाद और पुष्टिभक्तिमार्गका आधार क्या है.

प्रमाण

ज्ञानके साधनको 'प्रमाण' कहते हैं. जो भी कुछ हमें दिखलायी देता है, उदाहरणतया: घोड़ा या घड़ा, उसे देख पानेमें हमारी आंखें प्रमाण बनती हैं. जो कीर्तन हम सुन पाते हैं, उसमें हमारे कान प्रमाण होते हैं. जो इतिहास हम जान पाते हैं, उसमें हमारे बड़ोंके वचन और इतिहासकारों द्वारा लिखित पुस्तकें प्रमाण बनती हैं. राणाप्रताप शिवाजी या मानसिंग जैसे राजाओंको और उनके कार्योंको हमने देखा नहीं था; फिरभी हम उनके बारेमें बहुत कुछ जानते हैं और मानते भी हैं कि उन राजाओंने ऐसे-ऐसे कार्य किये थे. यह हम श्रद्धासे नहीं परंतु बुद्धिसे जानते और मानते हैं. उसी तरह यह जगत् किसने बनाया है, कैसे बनाया है, किसमेंसे बनाया है, भगवान् कैसे होते हैं, भगवानको प्राप्त कैसे करना आदि बातें हम अपनी स्वतन्त्र बुद्धिसे जान नहीं पाते. भागवत गीता जैसे शास्त्र; और श्रीमहाप्रभुजी जैसे महापुरुष, जिन्होंने खुद भगवानका साक्षात्कार किया है, जब हमें ये सारी बातें समझाते हैं तभी जाकर हम जान पाते हैं. इसीलिये शास्त्रोंके वचन और महापुरुषोंकी वाणी हमारेलिये प्रमाण (ज्ञानके साधन) हैं.

वैसे तो हमारे शास्त्रोंका इतना विस्तार है कि उसे समझनेमें पूरा एक जन्म भी कम पड़ जाये. शायद कोई व्यक्ति समग्र शास्त्रको पढ़ भी ले तब भी समग्र शास्त्रका आशय समझ पाना बहोत ही कठिन है. क्योंकि शास्त्रोंमें सभी बातें किसी एक व्यक्तिकेलिये लिखि नहीं गयी हैं. अलग-अलग स्वभाववाले लोगोंकेलिये शास्त्रोंमें अलग-अलग बातें बतायी गयी हैं. इसीलिये कहीं-कहीं शास्त्रोंकी बातोंमें

हमें विरोधाभास भी दिखलायी देता है. अत्यंत बुद्धिमान् व्यक्तिकी तो बात और है पर साधारण लोगोंके बसकी बात नहीं होती कि वे सभी शास्त्रोंको पढ़कर समझ सकें. वैसे तो सभी कुछ भगवान् ही बने हैं इस कारण सभी शास्त्र भी भगवद्रूप ही हैं, फिरभी शुरुमें हमें उन्ही शास्त्रोंको पढ़ना चाहिये कि जिनमें कहीं कोई विरोधाभास या अस्पष्टता न हो और जो सभी शास्त्रोंका निचोड़ समझाते हों. इसी कारण श्रीमहाप्रभुजी 'शास्त्रार्थनिबन्ध'में आज्ञा करते हैं :

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥

अर्थ : ज्ञानप्राप्तिकी अवस्थामें अर्थात् विद्यार्थी अवस्थामें वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीभागवत् ये चारों शास्त्र एकवाक्यतापन्न होकर अर्थात् परस्पर मिलकर प्रमाण (ज्ञानप्राप्तिके साधन) बनते हैं.

इस प्रकार यहां तक हमने पुष्टिभक्तिमार्गको हमारे शास्त्र और मार्गप्रवर्तकाचार्यों के वचनोंके आधारपर संक्षेपमें समझा. सर्वशास्त्रोंका निचोड़ सिर्फ यही समझमें आता है :

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्
एको देवो देवकीपुत्र एव।
मन्त्रोप्येकस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

अर्थ : भगवान् श्रीकृष्णकी कही हुयी गीता ही सर्वशास्त्र-सारभूत ग्रंथ है. देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ही एक देवाधिदेव हैं. श्रीकृष्णके नाम ही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र हैं; और श्रीकृष्णकी सेवा ही श्रेष्ठ कर्तव्य है.

सामान्यधर्म

धर्मके दो भेद हैं — एक आत्मधर्म जो जीवात्मासे सम्बन्धित है और दूसरा देहधर्म जो हमारे देहसे सम्बन्धित है. पुष्टिभक्ति-कृष्णसेवा तथा श्रीकृष्णकी लीलाओंका श्रवण-कीर्तन-स्मरण हमारा 'आत्मधर्म' है. जबकी समाजमें

हमें कैसे रहना, क्या करना, क्या न करना आदि 'देहधर्म' हैं. देहधर्मको 'बाह्यधर्म' भी कहा जाता है. इन धर्मोंका निरूपण हमें स्मृति, पुराण और धर्मशास्त्रों में मिलता है.

देहधर्मके पुनः दो प्रकार होते हैं— सामान्यधर्म और विशेषधर्म. विशेषधर्ममें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के वर्णधर्म और संन्यास, वानप्रस्थ, गृहस्थ तथा ब्रह्मचर्य आश्रमके कर्तव्य तथा अकर्तव्य का निरूपण किया गया है. जबकि सामान्यधर्म सभी वर्ण तथा आश्रम केलिये समानरूपसे कहे गये हैं. इन सभी धर्मोंको 'वैदिक-वर्णाश्रम-सनातनधर्म' कहा जाता है, जिन्हें आज हम हिन्दुधर्मके नामसे जानते हैं. धर्मके इन भेदोंको तथा उपभेदोंको अधोनिर्दिष्ट तालिकासे अच्छी तरह समझा जा सकता है.

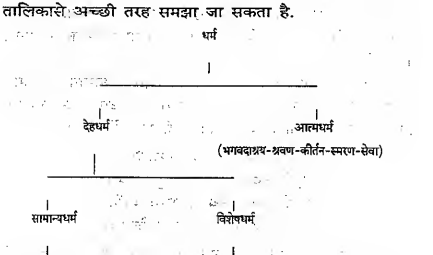

मनुस्मृतिमें सामान्यधर्मोंको इस प्रकार बताया गया है :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धृति = सन्तोषी बनना.

क्षमा = प्राणीमात्रपर दयाभाव रखना, किसीका बुरा नहीं सोचना.

दम = सहनशील बनना, सुख-दुःख - मानापमान सहन करना.

अस्तेय = अन्यायपूर्वक किसीका कुछ भी नहीं लेना. चोरी नहीं करनी.

शौच = शास्त्रोंमें बताये गये नियमोंके अनुसार पवित्रता रखनी.

इन्द्रियनिग्रह = हाथ, पांव, मन आदि इन्द्रियोंको अधर्मकार्योंमें तत्पर होनेसे बचाना. विषयविलासी न बनना.

धी = धर्म और व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करना.

विद्या = आत्मधर्मका ज्ञानप्राप्त करना.

सत्य = सच बोलना, सत्यका पक्ष लेना, गलतकाम नहीं करना.

अक्रोध = मनपर संयम रखना. क्रोध नहीं करना.

ये दसों धर्म मनुष्यमात्रकेलिये कल्याणकारी हैं. इन धर्मोंका आचरण करनेसे हमारा सामाजिक जीवन तो सुधरता ही है साथ-साथ हमारी पुष्टिभक्तिमें भी ये धर्म सहायक होते हैं. अतः हमें पुष्टिधर्मका पालन करते हुवे वैदिक-वर्णाश्रम-सनातन-हिन्दुधर्मका भी आचरण करना चाहिये. शास्त्र हमारे वर्णाश्रमके अनुसार हमें जो भी विशेषधर्मका उपदेश करते हैं उसका पालन भी यथाशक्ति करना चाहिये. परन्तु अधर्म, परधर्म और उपधर्म (पाखंड) से तो हमेंशा दूर ही रहना चाहिये.

हमारे धर्ममें गायको बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है. गाय हमारेलिये एक धार्मिक पवित्रप्राणी होनेके साथ-साथ हमारी माताके समान भी होती है. गायकेलिये कहा गया है :

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदा।

अर्थ : सबको सुख देनेवाली गाय सर्वमनुष्योंकी माताके समान है.

और फिर गाय तो प्रभुको भी अत्यंत प्रिय है. गायके बिना तो प्रभु क्षण भर भी नहीं रह सकते. गायका पालन-पोषण और रक्षण करते होनेसे ही श्रीकृष्णका नाम 'गोपाल' है. प्रभुको प्रिय ऐसी गायोंका पालन-पोषण और रक्षण करना हमारा भी पवित्र कर्तव्य है.

दिनचर्या

आलस्य हमारे विकासका सबसे बड़ा शत्रु है. इसलिये आलस्य छोड़कर प्रातः जल्दी उठना चाहिये. दिनकी शुरुआत यदि हम शुभकार्यसे करते हैं तो सारा दिन अच्छा जाता है. प्रातः उठते ही श्रीमहाप्रभुजीके चित्रजीके दर्शन करने चाहिये. घरमें यदि प्रभु बिराजते हों तो मन्दिरके पास जा कर दंडवत्प्रणाम करने चाहिये. घरके सभी लोगोंको "जय श्रीकृष्ण" कह कर बड़ोंके आशीर्वाद लेने चाहिये.

देहकृत्य करके, व्यायामके बाद स्नान करके, तिलक करके, चरणामृत लेकर, श्रीठाकुरजीकी सेवा जितनी भी बन सके बड़ोंसे आज्ञा लेकर करनी चाहिये. दीक्षामन्त्रका स्मरण न करनेपर दीक्षा निवृत्त हो जाती है. अतः अष्टाक्षर एवं ब्रह्मसंबंधमन्त्र की कमसे कम एक-एक माला तो अवश्य ही फिरानी चाहिये. शान्त जगहपर बैठकर, मनको स्थिरकर श्रीठाकुरजीके चित्रजीको सामने पधराकर उनके दर्शन करते हुवे मन्त्रका जप करना चाहिये. श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थोंका अभ्यास यदि हमें हो तो मार्गमें कभी सन्देह नहीं होता. अतः षोडशग्रन्थ निबन्धादि ग्रन्थोंका आग्रहपूर्वक रोज ही पाठ करना चाहिये. भागवत और गीताका पाठ भी यथाशक्ति अवश्य करना चाहिये. पाठ तो दिनमें कभी भी हो सकते हैं, पर प्रातःस्नान करके हो तो और भी अच्छी बात है.

यदि ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा ली हो तो समर्पित-प्रसादके भोजनका आग्रह रखना चाहिये. अतः श्रीठाकुरजी जो सामग्री आरोगें हों उसीका भोजन करना चाहिये. यहांपर याद रखना चाहिये कि श्रीठाकुरजीको खुदके द्रव्यसे जो भोग धरा

जाता है वही समर्पित प्रसाद बनता है. किसी भी प्रकारका व्यसन हमारी बुद्धिका नाश करनेवाला होता है, इसलिये सभी प्रकारके व्यसनोंका त्याग करना चाहिये.

दिनभरमें जो भी खाली समय मिल जाय, उसमें स्वमार्गीय सिद्धांतग्रन्थ, ८४-२५२ वैष्णवोंकी वार्ता और मार्गसंबंधी साहित्यका पठन भी करना चाहिये. गांवमें जहां सत्संग, भगवद्वार्ता या सांप्रदायिक पाठशाला चलती हो वहां आग्रहपूर्वक जाना चाहिये. गांवमें गुरुदेव या गोस्वामी आचार्य बिराजते हों तो मार्गके सिद्धांतग्रन्थोंका अध्ययन करनेकेलिये उनसे बार बार विनंती करते रहना चाहिये. गुरुओंका यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह अपने शिष्योंको सिद्धांतोपदेश करें. यदि कोई गुरुपदासीन व्यक्ति मार्गके सिद्धांतोंका उपदेश न करता हो तो वह गुरुपदके लायक ही नहीं है.

हमारे संप्रदायसे संबंध रखनेवाली कोई भी सत्प्रवृत्ति होती हो उसमें यथाशक्ति तन-मन-धनसे सहयोग करना चाहिये. हमारे मार्ग, हमारे सेव्यप्रभु श्रीकृष्ण या हमारे धर्म केलिये बुरा बोलनेवालोंका या बुरा करनेवालोंका हमें कड़ाईसे विरोध करना चाहिये. सांप्रदायिक स्थानोंमें जहां कहीं भी श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञासे विपरीत कार्य चलते हों वहांपर हमें सम्मिलित होना नहीं चाहिये; और न ही ऐसे कार्यमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे सहयोग ही करना चाहिये. क्योंकि ऐसे स्थानोंमें जाना या मार्गविरोधी कार्योंमें सहयोग करनेसे बड़ा पाप और कोई नहीं हो सकता.

जो लोग अज्ञानसे श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धांतोंसे विपरीत आचरण करते हैं, उन्हें प्रेमसे बार-बार समझाना हमारा पवित्र कर्तव्य है. पर यह तभी संभव है जब हम खुद श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धांतोंको अच्छी तरहसे समझते हों! अंत: अन्तमें हम श्रीमहाप्रभुजीके चरणारविंदमें प्रणाम करते हुवे आईये हम ऐसी प्रार्थना करें कि हमें मार्गके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो और उसके अनुसार हम आचरण कर सकें, ऐसी बुद्धि, निष्ठा और शक्ति हमारे भीतर पनपे.

मैं पुष्टिभक्तिमार्गीय वैष्णव हूँ.

श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञाको निष्ठापूर्वक अनुसरना यह मेरा परमधर्म है.

देवाधिदेव पुष्टिपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण एकमात्र मेरे आश्रयस्थान हैं.

मन, वाणी और कृति से श्रीकृष्णकी सेवा करनेमें ही मेरे जीवनकी कृतार्थता है.

श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञाको अनुसरनेवाले सभी वैष्णव और गुरुजन मेरेलिये आदरणीय हैं.

॥ श्रीहरिः ॥

अपने पुष्टिमार्गमें क्या नहीं है? सब कुछ है, जो किसी भी एक धर्म-सम्प्रदायको प्रामाणिक रूपसे अपेक्षित हो ऐसा!

फिरभी एक बातकी न्यूनता, जो और किसी भी धर्म-सम्प्रदायमें हो या न हो, वैसी महती हानि पहुँचानेवाली एक न्यूनता अपने सम्प्रदायमें है. वह न्यूनता यह है कि अपने सम्प्रदायके उपदेशक और अनुगामी दोनो वर्गोंकेलिये अपने दिव्य सिद्धांत, उनके निरूपक ग्रंथ, उनके अध्ययनाध्यापन-स्वाध्याय का संचालन करनेवाली संस्थाओंका भयंकर दारिद्र्य अपने मार्गमें है. इस एक जबरदस्त न्यूनताके कारण अपनी पुष्टिसृष्टिमें स्वमार्गीय सिद्धांतोंके बारेमें सभानता निष्ठा और कार्यप्रणालिका का महदंशमें अभाव प्रवर्तित होता दिखलाई दे रहा है. इस दुष्परिणामकी विडम्बनाको कौन नहीं जानता? आज हम "यावद् जीवेद् सुखं जीवेद्"के लौकायतिक आदर्शको उस हदतक पकड़ कर जीवन जीना चाहते हैं कि साक्षात् श्रीमहाप्रभुजीके भी वचन जो सुखी जीवनमें आड़े आते हों तो उन वचनोंके केवल अभिप्रायको भी विचारनेकी धीरज और सहिष्णुता हम खो बैठे हैं!

मोटी हवेली (जुनागढ़) में चलती पुष्टिमार्गीय पाठशालाके विद्यार्थिओंको पुष्टिमार्गके मूलभूत सिद्धांतोंकी समझ देनेकेलिये जो यह छोटीसी पुस्तिका प्रकाशित हो रही है — वस्तुतः यह एक अतिशय अभिनन्दनीय शुभारंभ है.

इतने छोटेसे आकार-प्रकारमें इतनी सरल-सुबोध भाषामें और इतनी प्रांजल शैलीमें जिस तरहसे शुद्ध-शुद्ध पुष्टिसिद्धांतोंकी प्रस्तुति इसमें हुई है, वह श्रीमहाप्रभुजीकी साक्षात् कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण है. इस पुस्तिकाके द्वारा सभी विद्यार्थियोंकी मति-रति-कृतिमें पुष्टिमार्गीय सिद्धांतोंकी दिव्य प्रतिष्ठा होगी ही — ऐसा शुभ विश्वास व्यक्त करते हुवे मुझे अत्यन्त हर्ष, सन्तोष और कृतकृत्यता की अनुभूति हो रही है.

प्रभुचरणोत्सव — *गोस्वामी श्याममनोहर*
श्रीवल्लभाब्द ५१४ — *(पार्ला - किशनगढ़).*